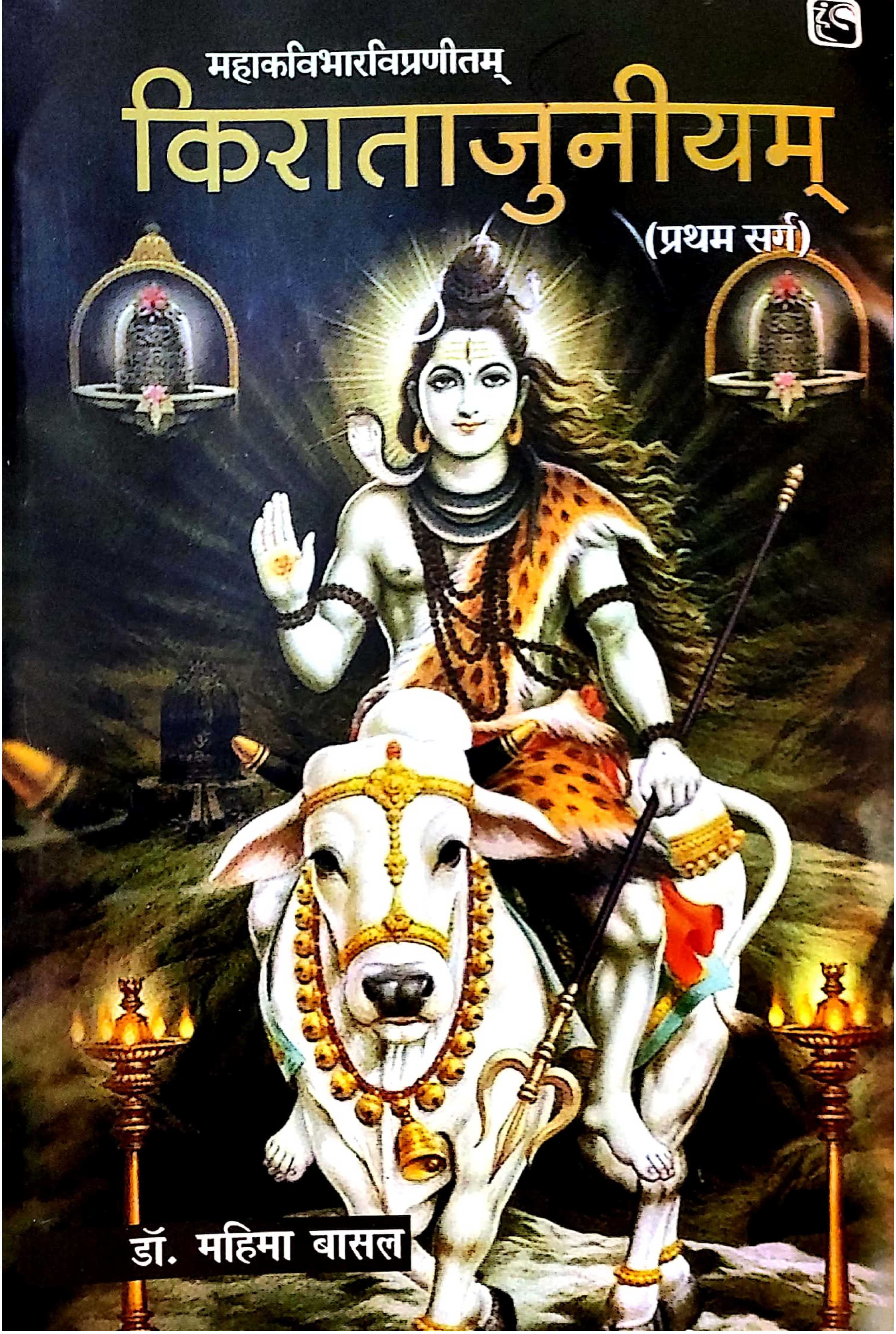
महाकविभारविप्रणीतम्

किरातार्जुनीयम्

(प्रथम सर्ग)



डॉ. महिमा बासल

किरातार्जुनीयम्

प्रथमः सर्गः

श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीं,
प्रज्ञासु वृत्ति यमयुङ्क्त वेदितुम्।
स वर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ,
युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः।। 1।।

अन्वयः—कुरुणाम् अधिपस्य श्रियः पालनीम् प्रजासु वृत्तिम् वेदितुम् यम् अयुङ्क्त, स वर्णिलिङ्गी वनेचरः विदितः (सन्) द्वैतवने युधिष्ठिरं समाययौ।

शब्दार्थ—कुरूणाम् = कुरुजनपद के, अधिपस्य = राजा (दुर्योधन) की, श्रियः = राजलक्ष्मी का, पालनीम् = पालन करने वाले, प्रजासु = प्रजा के प्रति, वृत्तिम् = व्यवहार को, वेदितुम् = जानने के लिए, यम् = जिसे, अयुङ्क्त = नियुक्त किया था, सः = वह, वर्णिलिङ्गी = ब्रह्मचारी वेशधारी, वनेचर = वन में विचरण करने वाला, विदितः सन् = विदित होकर, द्वैतवने = द्वैतवन में, युधिष्ठरम् = युधिष्ठिर के पास, समाययौ = लौट आया।

अनुवाद—कुरुजनपद के स्वामी की राजलक्ष्मी के रक्षक दुर्योधन के प्रजा विषयक व्यवहार को जानने के लिए (युधिष्ठिर ने) जिसे नियुक्त किया था, वह ब्रह्मचारी का वेश धारण करने वाला वनेचर सारा वृत्तान्त जाकर द्वैतवन में युधिष्ठिर के पास आया।

भावार्थ—द्यूतक्रीड़ा में पराजित होने के पश्चात् युधिष्ठिर अपने भाइयों व द्रौपदी के साथ वन में जाकर रहने लगे। वहाँ रहते हुए दुर्योधन की शासन व्यवस्था व प्रजा–विषयक वृत्ति अर्थात् दुर्योधन अपनी प्रजा के साथ कैसा व्यवहार करता है, जिससे कि राजलक्ष्मी सुरक्षित बनी हुई है इत्यादि बातों को जानने के लिए युधिष्ठिर ने जिस व्यक्ति को नियुक्त किया था, ब्रह्मचारी का वेश धारण करने वाला वह किरात सम्पूर्ण वृतान्त जानकर द्वैतवन में युधिष्ठिर के पास लौट आया। अर्थात् वह किरात ब्रह्मचारी के रूप में वहाँ जाकर और सब पता लगाकर युधिष्ठिर के पास लौट आया।

संस्कृत-व्याख्या—कुरूणाम् = कुरुजनपदानाम्, अधिपस्य = स्वामिनः दुर्योधनस्य, श्रियः = राजलक्ष्म्याः, पालनीम् = पालनकर्त्रीम्, प्रजासु = प्रकृतिषु, वृत्तिम् = व्यवहारं, वेदितुम् = ज्ञातुम्, यं = यं जनम्, अयुङ्क्त = नियुक्तवान्, सः = स जनः, वर्णलिङ्गी = ब्रह्मचारिवेशधारी, वनेचरः = वने चरतीति वनेचरः, किरातः विदितः (सन्) = ज्ञातवृत्तान्तः, द्वैतवने = द्वैत नामके वने, युधिष्ठरं = धर्मराजम्, समाययौ = संप्राप्तवान्।

कोष—'प्रजा स्यात्सन्ततौजने' इत्यमरः। 'प्रभुः परिवृढोऽधिपः', 'भेदाः किरातसबरपुलिन्दाः म्लेच्छजायतः' इति चामरः।

टिप्पणी—(1) आचार्यो के मतानुसार काव्य का प्रारम्भ आशीर्वाद, नमस्कार, अथवा कथावस्तु निर्देश से होना चाहिए। "आशीर्नमस्क्रियाः वस्तुनिर्देशों वापि, तन्मुखम्।" महाकवि भारवि ने इसी परम्परा का अनुसरण करते हुए महाकाव्य के प्रथम श्लोक में कथावस्तु का निर्देश किया है। अतः वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण है।

(2) भारवि ने श्लोक के प्रारम्भ में श्री शब्द का प्रयोग किया है। यह 'श्री' शब्द मंगलवाची है। कहा भी गया है कि—'देवतावाचकाः शब्दा ये च भद्रादिवाचकाः। ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युर्लिपितो गणतोऽपि वा।' अतः श्लोक के प्रारम्भ में वर्ण-गणना की अशुद्धि का विचार नहीं किया जाता है।

(3) कुरूणाम्—कुरूणाम् निवासाः कुरवो जनपदाः तेषाम्।

कुरु + अण् + आम्

(4) अधिपस्य—अधिपातीति अधिपः। अधि + पा + क + ङस्।

(5) पालनीम् = पाल्यते अनया इति पालनी ताम्। (पाल + ल्युट् (अन्) ङीप् (ई) 'वृतिम्' का विशेषण।

(6) प्रजासु = प्र+जन+ड+टाप+सुप्। प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः तासु-प्रजासु

(7) वृत्तिम् = वृत्+क्तिन्+अम्।

(8) वेदितुम् = विद्+तुमुन्। अयुङ्क्त = युज्+लङ्, प्र. पु. एकवचन का रूप।

(10) वर्णिलिंगी = वर्ण : प्रशस्तिरस्यास्तीति वर्णी (वर्ण+इनि) तस्य लिङ्गम्, वर्णिलिङ्गमस्यास्तीति वर्णिलिङ्गी (वर्णलिङ्ग+इनि)

(11) वनेचरः = वने चरतीति। वने+चर्+ट+सु।

(12) विदितः—विदितम् वेदनम् अस्य अस्तीति विदितः। विद्+इचत्+सु अथवा विद्+क्त+सु अविवक्षितं कर्म से सकर्मक में भी क्त हुआ वनेचरः का विशेषण।

(13) द्वैतवने = द्वैताख्यं वनं द्वैतवनं, तस्मिन्।

(14) युधिष्ठिर = युधि रणे स्थिरः युधिष्ठिरः। 'हलन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्।' इस सूत्र से युधि की सप्तमी का विभक्ति का लोप नहीं हुआ।

(15) समाययौ =सम्+आ+या धातु परोक्षभूत लिट् प्र. पु. एकवचन।

छन्द—इस श्लोक में वंशस्थ छन्द है। वंशस्थ छन्द का लक्षण इस प्रकार है—"जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।" अर्थात् इसे प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण, तगण, जगण और रगण आता है। यथा—

जगण	तगण	जगण	रगण
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ । ऽ
श्रियः कु रूणा म		धिपस्यं	पालनीम्

यह द्वादशाक्षरात्मक जगती भेद का वर्णिक समवृत्त है।

विशेष—इस महाकाव्य का नाम महाकवि भारवि ने 'किरातार्जुनीयम्' रखा। अतः किरात वेशधारी भगवान् शिव और धनुर्धर अर्जुन दोनों को आधार बनाकर रचित काव्य का नाम 'किरातार्जुनीयम्' हुआ। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—

किरातश्च अर्जुनश्च (द्वन्द्व) किरातार्जुनौ, तौ अधिकृत्य कृतं काव्यमिति किरातार्जुनीयम्। किरातार्जुन+छप्रत्यय, ईयादेश।

कृतप्रणामस्य महीं महीभुजे, — युधिष्ठिर के लिए
जितां सपत्नेन निवेदयिष्यतः।
न विव्यधे तस्य मनो न हि प्रियं,
प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः ॥ 2 ॥

अन्वयः—कृतप्रणामस्य सपत्ने न जितां महीं महीभुजे निवेदयिष्यतः तस्य मनः न विव्यथे। हि हितैषिणः मृषा प्रियम् प्रवक्तुम् न इच्छन्ति।

शब्दार्थ—कृतप्रणामस्य = प्रणाम करने वाले, सपत्नेन = शत्रु के द्वारा, जिताम् = जीती हुई, महीम् = भूमि के सम्बन्ध में, महीभुजे = राजा युधिष्ठिर के, निवेदयिष्यतः = निवेदन करने वाले, तस्य = उस गुप्तचर किरात का, मनः = मन, न विव्यथे = दुःखी नहीं हुआ, हि = क्योंकि, हितैषिणः = (स्वामी का) हित चाहने वाले, व्यक्ति, मृषा = असत्य, प्रियम् = मधुर, प्रवक्तुं न इच्छन्ति = नहीं बोलना चाहते हैं।

अनुवाद—प्रणाम करके शत्रु के द्वारा जीत ली गई पृथ्वी का वृत्तान्त महाराज युधिष्ठिर से वर्णन करते हुए उस किरात का मन व्यथित नहीं हुआ। क्योंकि हित चाहनेवाले व्यक्ति असत्य प्रिय बोलने की इच्छा नहीं करते।

भावार्थ—वनेचर ने लौटकर महाराज युधिष्ठिर को प्रणाम किया। तत्पश्चात् दुर्योधन की शासन व्यवस्था एवं प्रजा सम्बन्धी व्यवहार को स्पष्ट शब्दों में कह सुनाया। यद्यपि

वनेचर इस बात से परिचित था कि शत्रु की प्रशंसा करने पर उसके स्वामी (युधिष्ठिर) को अत्यन्त कष्ट होगा, तथापि उसने अपने कर्त्तव्य को समझते हुए वस्तुस्थिति का समुचित वर्णन किया। उस किरात को दुर्योधन के वैभव का अप्रिय पर सत्य वृत्तान्त युधिठिर से कहने में तनिक भी संकोच नहीं हुआ, क्योंकि स्वामी के हितैषी लोग प्रिय परन्तु असत्य वचन कहना नहीं चाहते हैं। वनेचर इस तथ्य को जानता था कि यदि वास्तविकता को बता दिया जाएगा, तो उसके स्वामी अवश्य ही उसका प्रतीकार करने में समर्थ हो सकेंगे।

संस्कृत-व्याख्या—कृतप्रणामस्य = विहितनमस्कारस्य, सपत्नेन = शत्रुणा, जिताम् = विजिताम्, महीम् = पृथ्वीम्, महीभुजे = राज्ञे युधिष्ठिराय, निवेदयिष्यतः = विज्ञापयिष्यतः निवेदनं कर्तुम् इच्छतः, इत्यर्थः, तस्य = वनेचरस्य, मनः = चेतः, न विव्यथे = न व्यथितम् अभवत्, हि = निश्चयेन, हितैषिणः = स्वामिनः हितकांक्षिणः, मृषा = असत्यम्, प्रियम् = मधुरम् न प्रवक्तुमिच्छन्ति = न हि वक्तुं वाञ्छन्ति।

कोष—'रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेजणदुर्हृदःइत्यमरः'। 'क्ष्मावनिर्मेदिनी मही', 'मृजा मृत्या न वितथे' इति चामरः। 'स्वान्तं हृन्मानसं मनः' इत्यमरः।

अलंकार—सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। क्योंकि इसमें प्रथम तीन चरणों में कही गई बात का 'न प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः' सूक्त्यात्मक सामान्य कथन से समर्थन किया गया है। 'महीं महीभुजे' में वृत्त्यानुप्रास अलंकार भी है।

टिप्पणी—(1) कृतप्रणामस्य = कृतः प्रणामः येन स तस्य। कृ+क्त+कर्मणि कृतः, प्र+नम्+घञ् प्रत्यय, भावे प्रणामः।

(2) महीभुजे = महीं भुनक्ति इति महीभुक् (भुज्+क्विप्) तस्मै।

(3) जिताम् = जि+क्त+टाप् = जिता+ताम्।

(4) निवेदयिष्यतः = नि+विद्+णिच्+लृट्+शतृ+ङस्।

(5) विव्यथे = व्यथ् धातु लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन।

(6) हितैषिणः = हितमिच्छन्ति इति हितैषिणः। हित्+इष् धातु + णिनि कर्त्तरि ताच्छील्ये।

(7) प्रवक्तुम्+प्र+वच्+तुमन् (तुम्)।

छन्द—इस श्लोक में भी वंशस्थ छन्द है। प्रस्तुत सर्ग के अन्तिम पद्य को छोड़कर सभी पद्यों में यही छन्द प्रयुक्त हुआ है।

विशेष—प्रथम सर्ग में वनेचर को युधिष्ठिर का गुप्तचर बताया गया है। नीतिवाक्यानुसार गुप्तचर के ये गुण होते हैं—'अमौढ्यममान्धमृमषाभाषित्वमभ्यूहकत्त्वं च'। इन गुणों से रहित गुप्तचर स्वामिद्रोही होता है। वनेचर को भारवि ने गुणसम्पन्न गुप्तचर बताया है।

द्विषां विघाताय विधातुमिच्छतो,
रहस्यनुज्ञामधिगम्य भूभृतः।
ससौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीं,
विनिश्चितार्थामिति वाचमाददे।।3।।

अन्वयः—स द्विषाम् विघाताय विधातुम् इच्छतः भूभृतः अनुज्ञाम् अधिगम्य रहसि सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीम् विनिश्चतार्थाम् इति वाचम् आददे।

शब्दार्थ—सः = उस वनेचर ने, द्विषाम् = शत्रुओं के, विघाताय = विनाश के लिए, विधातुम् = कुछ करना, इच्छतः = चाहने वाले, भूभृतः = राजा की, अनुज्ञाम् = अनुमति को, अधिगम्य = प्राप्त करके, रहसि = एकान्त में, सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीम् = शब्द सौष्ठव और अर्थ सम्पत्ति आदि गुणों से युक्त, विनिश्चतार्थाम् = निश्चित अर्थ वाली, इति = इस प्रकार की, वाचम् = वाणी को, आददे= बोलना प्रारम्भ किया।

अनुवाद—उस वनेचर ने शत्रुओं को विनाश करने की इच्छा वाले राजा युधिष्ठिर की अनुमति पाकर एकान्त में शब्द सौष्ठव और अर्थ सम्पत्ति आदि गुणों से युक्त तथा निश्चित अर्थ वाले इस प्रकार के वचन बोलना प्रारम्भ किया।

भावार्थ—यद्यपि मेरे द्वारा कहा जाने वाला संदेश कानों को प्रिय लगने वाला नहीं है, तथापि स्वामी के हित को दृष्टि में रखकर व शत्रु का प्रतीकार करने की भावना से कहना पड़ रहा है–ऐसा मन में विचार तथा अप्रिय बात कहने सम्बन्धी मेरा अपराध क्षमा करें, इस प्रकार की अनुमति वनेचर ने शत्रुओं का विनाश करने की इच्छा रखने वाला राजा युधिष्ठिर से प्राप्त करने के पश्चात् शब्दार्थ के गौरव से सम्पन्न एवं प्रमाणित वचन कहना प्रारम्भ किया।

संस्कृत-व्याख्या—सः = वनेचरः, द्विषाम् = शत्रूणाम्, विघाताय = विनाशाय, विधातुम् = उपायं कर्तुम्, इच्छतः = वाञ्छतः, भूभृतः = नृपस्य युधिष्ठिरस्य, अनुज्ञाम् = अनुमतिम्, अधिगम्य = प्राप्य, रहसि = एकान्ते, सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीम् = शब्दार्थ-सौन्दर्यादिगुणोपेताम्, विनिश्चतार्थाम् = सन्देहरहिताम्, इति = एवम्, वाचम् = वाणीम्, आददे = उवाच, स्वीकृतवान् वा।

कोष—'अर्थो विषयार्थमयोर्धनकारणवस्तुषु। अभिधेये च शब्दानां निवृत्ते च प्रयोजने' इति मेदिनी। 'ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाक्वाणी सरस्वती' इत्यमरः।

Dec 1996 -> हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः" – 1999 June
-> इति कस्य ग्रन्थे वर्णितम्।

Dec 1998

अलंकार—साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग होने से परिकर अलंकार है। वर्णावृत्ति से अनुप्रास अलंकार भी है।

टिप्पणी—(1) कवि श्रेष्ठ भाषण में तीन विशेषताएँ आवश्यक मानता है—

(अ) उचित शब्दावली का प्रयोग, (ब) महत्त्वपूर्ण कथ्य, (स) सन्देहरहित निश्चित अर्थ का होना।

इस काव्य के द्वितीय सर्ग में "स्फुटता न पदैरपाकृता" इत्यादि श्लोक में भी कवि ने स्पष्टता, अर्थ गौरव आदि भाषा के गुणों का उल्लेख किया है। प्रस्तुत श्लोक में गुप्तचर किरात के कथन को इन्हीं गुणों से युक्त बताया है।

राजा युधिष्ठिर शीघ्र ही शत्रु का प्रतीकार करना चाहते हैं। वह इससे पूर्व शत्रु की गतिविधियों की पूर्ण जानकारी प्राप्त करना आवश्यक समझते हैं। अतः अपने कुशल गुप्तचर का प्रतिवेदन एकान्त में सुनते हैं, ताकि वास्तविक स्थिति से अवगत हो सकें।

(3) भूभृतः = भुवं बिभर्ति इति भूभृत् तस्य। उपपदतत्पुरुष।

भू+भृ+क्विप्। षष्ठी एकवचन।

(4) द्विषाम् = द्विष् +क्विप्। षष्ठी एकवचन।

(5) विघाताय = वि+हन्+णिच्+घञ् = विघात, तस्मै।

(6) विधातुम् = वि+धा+तुमुन्।

(7) इच्छतः = इष् धातु +शतृ प्रत्यय षष्ठी एकवचन।

(8) रहसि = रमन्ते अस्मिन् इति रम्+असुन् = हस् तस्मिन्।

(9) सौष्ठवौदार्यविशेषशालिनीम् = सौष्ठवं च औदार्यं च तयोः विशेषेण शाल्यते इति ताम्। शाल्+णिनि+ङीष् = शालिनी ताम्।

(10) विनिश्चतार्थाम् = विनिश्चतः अर्थः यस्या सा विनिश्चितार्था ताम्। यह वाचम् का विशेषण है।

(5) 1999 June (11) आददते = आ +दा+लिट्। 'दा' धातु का अर्थ है देना, परन्तु आ उपसर्ग से कहना' अर्थ द्योतित होता है।

– राजा के लिए

Dec (1) 1996, (2) 2010 June, (3) June 2013, (4) Dec 1998

क्रियासु युक्तैर्नृपचारचक्षुषो
न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा,
हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।।4।।

-> कस्य इयम् उक्तिः ?
वनेचरस्य

अन्वयः—हे नृप! क्रियासु युक्तैः अनुजीविभिः चारचक्षुपः प्रभवः न वञ्चनीयाः, अतः साधु असाधु वा, क्षन्तुम् अर्हसि, हितम् मनोहारि च वचः दुर्लभम्।

शब्दार्थ—ने नृप ! = हे राजन्, क्रियासु = कार्यों में, युक्तैः = नियुक्त किये गये, अनुजीविभिः = सेवकों द्वारा, चारचक्षुषः = गुप्तचर रूपी नेत्रों वाले, प्रभवः =स्वामी लोग, न वञ्चनीयाः = ठगे नहीं जाने चाहिए, अतः = इसलिए, असाधु साधु वा = बुरा या भला (जो भी मैं कहूँ) क्षन्तुम् अर्हसि = आप क्षमा करने योग्य हैं, हि = क्योंकि, हितम् =हितकारक, मनोहारि = मन को प्रिय लगने वाली, वचः = वाणी, दुर्लभम् =दुर्लभ होता है।

अनुवाद—हे राजन् ! कार्यों में नियुक्त किये गये दूत आदि सेवकों को गुप्तचर रूपी नेत्रों वाले स्वामी को धोखा नहीं देना चाहिए। इसलिए प्रिय अथवा अप्रिय मेरे (कथन) को आप क्षमा करें। क्योंकि हित करने वाली तथा प्रिय लगने लगने वाली वाणी दुर्लभ होती है।

भावार्थ—कार्यों में नियुक्त सेवकों का कर्त्तव्य है कि वे स्वामी के साथ छल-कपट का व्यवहार न करें। राजाओं के नेत्र तो उनके गुप्तचर होते हैं। अतः अपनी स्वामी को उनके द्वारा धोखा नहीं दिया जाना चाहिए। अतः प्रिय अथवा अप्रिय मेरी बात को आप क्षमा करें, क्योंकि प्रिय और हितकार बात दुर्लभ होती है।

संस्कृत-व्याख्या—अस्मिन् श्लोके कर्त्तव्यनिष्ठः गुप्तचरः किरातः स्वप्रतिवेदने संभाव्यम् अप्रियकथनं लक्ष्यीकृत्य पूर्वमेव क्षमां याचते—

हे नृप! = हे राजन्, क्रियासु = कार्येषु, युक्तैः = नियुक्तैः, अनुजीविभिः = भृत्यैः, सेवकैः = चारचक्षुषः = चरा एव चाराः दूताः, ते एव चक्षुः नेत्रं येषां ते गुप्तचरनेत्राः, प्रभवः = स्वामिनः,न वञ्चनीयाः = न प्रतारणीया, अतः असाधु = अप्रियम्, साधु वा = प्रियं वा, (मम कथनं) क्षन्तुम् अर्हसि = क्षमस्व, हितम् = हितकारम्, मनोहारि = प्रियं च, वचः = वचनम्, दुर्लभम् = दुष्प्राप्यम् भवति।

कोष—'यथार्हवर्णः प्रणिधिरपसर्पश्चरः स्पशः। चार गूढ़पुरुषश्च' इत्यमरः।

'सुन्दरं रुचिरं चारु सुषमं साधुशोभनम्' इति चामरः।

अलंकार—सामान्य द्वारा विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। वैसे वर्णावृत्ति से अनुप्रास तथा 'असाधु साधु' में यमक अलंकार भी है।

टिप्पणी—(1) नृप = नृन् पाति इति नृपः। नृ+पा+क। सम्बोधन प्र. वि. एकवचन।

(2) युक्तैः = युज् धातु + क्त प्रत्यय, तृतीया बहुवचन।

(3) चारचक्षुषः = चाराः एव + चक्षूंषि येषां ते, बहुब्रीहि समास।

(4) अनुजीविभिः = अनुजीवितुं शीलं येषां ते तैः। अनु + जीव् + णिनि (इन्), तृतीया बहुवचन।

(5) वचनीया = वञ्च् धातु + णिच् (चुरादि) + अनीयर् प्रत्यय।

(6) मनोहारि = मनो हर्तुं शीलमस्येति मनोहारि। मनस् + हृ + णिनि।

(7) दुर्लभम् = दुःखेन लभ्यते। दुर् + लभ् + खल् कर्मणि।

विशेष—इस श्लोक में किरात ने गुप्तचरों में कर्त्तव्यनिष्ठा एवं सत्यवादिता को आवश्यक बताया है। राजा लोग तो गुप्तचर रूपी आँखों से ही देखते हैं। यदि राजा को प्रसन्न करने के लिए या चाटुकारिता द्वारा मधुर-कथन से गुप्तचर अप्रिय तथ्यों को सूचित नहीं करते हैं, तो वे अपने स्वामी को धोखा देते हैं, यह उचित नहीं है।

स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं,
हितान्न यः संश्रृणुते स किं प्रभुः।
सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं,
नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पदः।। 5।।

अन्वयः—यः अधिपम् साधु न शास्ति किम् सखा। यः हितात् न संशृणते स किम् प्रभुः। हि नृपेषु अमात्येषु च अनुकूलेषु सर्वसम्पदः सदा रतिम् कुर्वत।

शब्दार्थ—यः = जो अधिपम् = स्वामी को, साधु = भली प्रकार से, न शास्ति = उपदेश या परामर्श नहीं देता है, सः = वह कि सखा = कुत्सित मित्र या दुर्मन्त्री है, यः = जो राजा, हितात् = हितैषी व्यक्ति से, न संशृणुते = नहीं सुनता है, सः = वह, किं प्रभु = कुत्सित शासक है, हि = क्योंकि, नृपेषु = राजाओं, अमात्येषु च = तथा मंत्रियों के, अनुकूलेषु = अनुकूल रहने पर ही, सर्वसम्पदः = समस्त सम्पत्तियाँ, सदा = सर्वदा, रतिम् कुर्वते = अनुराग करती हैं।

अनुवाद—जो स्वामी को उचित उपदेश नहीं देता, वह बुरा मित्र है। जो (स्वामी) हितैषी से (हित की बात) नहीं सुनता वह बुरा स्वामी है, क्योंकि सम्पूर्ण समृद्धियाँ राजाओं और मंत्रियों के परस्पर अनुकूल होने पर सदैव अनुराग करती हैं।

भावार्थ—राजा एवं मंत्री को परस्पर अनुकूल रहकर कार्य करने चाहिए। जो मंत्री अपने स्वामी को समय-समय पर उचित परामर्श प्रदान नहीं करता है, वह कुत्सित या बुरा मंत्री है तथा जो राजा अपने हितकारक मंत्री के उचित परामर्श को स्वीकार नहीं करता है, वह बुरा स्वामी या कुत्सित राजा कहलाता है। निश्चय ही राजा और मंत्रियों की परस्पर अनुकूलता ही सम्पूर्ण सफलताओं का प्रमुख कारण है, जहाँ दोनों में तालमेल नहीं रहता, वहाँ कोई योजना सफल नहीं होती है और उनका राज्य धीरे-धीरे विनाश की ओर

अग्रसर होने लगता है। अतः वनेचर का अभिप्राय यह है कि यथार्थ बात को कहना वह अपना कर्त्तव्य मानता है तथा महाराज युधिष्ठिर का कर्त्तव्य है कि वे उसे सावधानी से शान्तिपूर्वक सुनें।

संस्कृत-व्याख्या—यः = अमात्यः सखा वा, अधिपम् = स्वामिनम्, साधु = हितकरम्, न शास्ति = नहि उपदिशति, सः = स, किंसखा = कुत्सित सखा। यः = स्वामी, हितात् = हितैषिजनात्, न संशृणुते = उपदेशं न शृणोति, सः किं प्रभु = कुत्सितः स्वामी अस्ति, हि = गतः, नृपेषु = राजसु चः तथा अमात्येषु = मन्त्रिजनेषु, अनुकूलेषु = परस्परम् अनराग-युक्तेषु, जातेषु एव, सर्वसम्पदः = सम्पूर्णसम्पत्तयः, रतिम् = अनुरागम्, कुर्वते = कुर्वन्ति। अतो मया वक्तव्यं त्वया च श्रोतव्यमिति भावः।

कोष—'मित्रं सखा सुहृत्' इत्यमरः। 'मन्त्री धीसचिवेऽमात्यः' इत्यमरः, 'मन्त्री बुद्धिसहायः स्यादमात्यः सचिवस्तथा' इति हलायुधः।

अलंकार—कारण के द्वारा प्रकृतार्थ का समर्थन करने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। '**किम्**' पद का अभिप्राय आक्षेपात्मक होने इसमें कार्यकारणद्वय की व्यंजना हुई है।

टिप्पणी—(1) किं सखा = कुत्सितः सखा (कर्मधारय समास)।

(2) न शास्ति = शास् + तिप् (लट्) 'शास्' धातु अदादिगण में होने के कारण द्विकर्मक है। इसका प्रधान कर्म 'साधु' तथा गौण कर्म 'अधिप' है।

(3) हितात् = धा + क्त नपुंसके भावे। हितमस्ति अस्य इति। हित + अच् मत्वर्थीय हितः। 'आख्यातोपयोग।' सूत्र से पंचमी।

(4) संशृणुते = सम् + श्रु + त (लट्)

(5) किं प्रभुः = कुत्सितः प्रभुः (कर्मधारय)

(6) अमात्येषु = अमा सह भवाः (अमा + ल्यप्) अमात्याः तेषु। भावे सप्तमी।

(7) सर्वसम्पदः = सर्वाश्च ताः सम्पदः इति कर्मधारय समास। सम् + पद् + क्विप् भावे जस्।

(8) रतिम् = रम् + क्तिन् + अम्।

निसर्गदुर्बोधमबोधविक्लवा,
क्व भूपतीनां चरितं क्व जन्तवः।
तवानुभावोऽयमवेदि यन्मया,
निगूढतत्त्वं नयवर्त्म विद्विषाम्।।6।।

अन्वयः—निसर्गदुर्बोधम् भूपतीनाम् चरितम् क्व, अबोध-विक्लवाः (मादृशाः) जन्तवः क्वः, (तथापि) निगूढतत्त्वम् विद्विषाम् नयवर्त्म यत् मया अवेदि (तत्) अयम् तव अनुभावः।

शब्दार्थ—निसर्गदुर्बोधम् = स्वभाव से दुर्बोध, भूपतीनां = राजाओं का, चरितम् = आचरण, क्व = कहाँ, निगूढत्त्वम् = गूढ़ रहस्यों वाला, विद्विषाम् = शत्रुओं का, नयवर्त्म = नीतिमार्ग, यत् = जो, मया अवेदि = मेरे द्वारा जाना गया, तत् = वह सब, अयम् = यह, तव = आपका ही, अनुभावः = प्रभाव है।

अनुवाद—किरात विनम्रता प्रकट करता हुआ राजा युधिष्ठिर से कहता है—

कहाँ तो स्वभाव से ही दुर्बोध राजाओं का आचरण और कहाँ मेरे समान अज्ञान के कारण अशक्त प्राणी ? (यह सब होने पर भी) जो मैं आपके शत्रुओं के गूढ़ तत्त्व वाले नीति मार्ग को जान सका हूँ, यह सब आपका ही प्रभाव है।

भावार्थ—राजाओं का नीति मार्ग बड़ा दुर्विज्ञेय होता है, राजाओं की कूटनीति समझना सामान्य बुद्धि के मानवों के लिए कठिन है। वनेचर कहता है—फिर भी मैंने दुर्योधन जैसे नीति कुशल एवं कपटपूर्ण व्यवहार करने वाले शत्रु का जो नीति-मार्ग जाना है, यह सब आपकी कृपा का फल है, मेरा बुद्धि कौशल नहीं। अर्थात् नीति-मार्ग को जानने का श्रेय वनेचर स्वयं न लेकर युधिष्ठिर को ही प्रदान करता है। वनेचर के कथन का आशय यह है कि वह दुर्योधन की शासन-व्यवस्था को लेकर जो कुछ कह रहा है, वह अच्छी तरह जानने पर ही कह रहा है। उसका कथन वृथा कर्मकठोर प्रलाप नहीं है।

संस्कृत-व्याख्या—निसर्गदुर्बोधम् = स्वभावाद् एव दुर्ज्ञेयम्, भूपतीनाम् = राज्ञाम्, चरितम् = आचरणम्, क्व = कुत्र वर्तते, अबोधविक्लवाः = अज्ञानेन विह्वलाः, जन्तवः = मादृशाः प्राणिनः, क्व = कुत्र ? अर्थात् द्वयोरेतयोः कार्ययो महदन्तरं वर्तते। तथापि, निगूढ-तत्त्वम् = निगूढं गुप्तं तत्त्वं रहस्यं यस्य तत्, विद्विषाम् = शत्रूणाम्, नयवर्त्म = नीतिप्रयोगः, यत् किंचित्, मया = वनेचरेण, अवेदि = ज्ञातम्, तत् = तत् सर्वम्, अयम् = एषः, तव = स्वामिनः अनुभावः = महिमा प्रभावो वा वर्तते।

कोष—'स्वरूपञ्च स्वभावश्च निसर्गश्च' इत्यमरः। 'जन्तु-जन्य-शरीरिणः', 'विक्लवो विह्वलः' इति चामरः।

'अनुभावः प्रभावे स्यान्निश्चये भावसूचने' इति मेदिनी।

अलंकार—कार्य-कारण या विवक्षित पदार्थ के प्रति वैलक्षव्य के कारण संघटना की अनुपपन्नता होने से विषम अलंकार प्रयुक्त है।

टिप्पणी—(1) निसर्गदुर्बोधम् = निसर्गेण दुर्बोधम् इति। तत्पुरुष समास।

(2) भूपतीनाम् = भुवः पतयः इति भूपतयः, तेषां भूपतीनाम् (षष्ठी तत्पुरुष), पातीति पतिः, पा + तिप् प्रत्यय कर्त्ता अर्थ में।

(3) अबोधविक्लवाः = न बोधः, अबोधः (नञ् समास) अबोधेन विक्लवाः इति अबोध विक्लवाः (तृतीया तत्पुरुष)।

(4) निगूढतत्त्वम् = निगूढं तत्त्वं यस्य तत्। (बहुव्रीहि) नि + गुङ् + क्त।

(5) विद्विषाम् = विशेषेण द्विषः विद्विषः, तेषां विद्विषाम्।

(6) नयवर्त्म = नयस्य वर्त्म इति नयवर्त्म।

(7) अवेदि = विद् + लुङ्।

(8) अनुभावः = भवनं भावः, भू + घञ् भावे। अनुगतः भाव अनुभावः (प्रादि तत्पुरुष)

(9) क्व चरितः क्व जन्तवः = दो 'क्व' का प्रयोग महान् अन्तर सूचित करता है। इससे ज्ञात होता है कि दोनों में महान् अन्तर है। "अभिज्ञानशाकुन्तल' में दुष्यन्त भी ऐसे ही नम्रतापूर्ण उद्गार प्रकट करता है—

"सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः
सम्भावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम्।। "(सप्तमांक)

विशेष—नयवर्त्म अर्थात् राजनीति का मार्ग या सिद्धान्त गूढ़ होता है। उसमें सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव ये छह गुण होते हैं। इसी से राजनीति को षाड्गुण्य कहा जाता है।

विशंकमानो भवतः पराभवं,
नृपासनस्थोऽपि वनाधिवासिनः।
दुरोदरच्छद्मजितां समीहते,
नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः।। 7।।

अन्वयः—नृपासनस्थः अपि सुयोधनः वनाधिवासिनः भवतः पराभवम् विशंकमानः दुरोदरच्छद्मजिताम् जगतीम् नयेन जेतुं समीहते।

शब्दार्थ—नृपासनस्थः = राजसिंहासन पर स्थित, अपि = भी, सुयोधनः = दुर्योधन, वनाधिवासिनः = वन में निवास करने वाले, भवतः = आप से, पराभवम् = पराजय रूप तिरस्कार की, विशंकमानः = आशंका करता हुआ, दुरोदरच्छद्मजिताम् = जुए के कपट से जीती हुई, जगतीम् = पृथ्वी को, नयेन = राजनीति से, जेतुं समीहते = जीतना चाहता है।

अनुवाद—राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हुआ भी दुर्योधन वन में निवास करने वाले आपसे पराजय की शंका करता हुआ जुए के बहाने जीती हुई पृथ्वी को अब राजनीतिक कौशल से जीतना चाहता है। अर्थात् प्रजाजनों के हृदय में अपने सुशासन की छाप अंकित करना चाहता है।

भावार्थ—वनेचर अपने स्वामी को दुर्योधन सम्बन्धी वृत्तान्त बतलाते हुआ कहता है कि दुर्योधन यद्यपि राज्य सिंहासन पर स्थित है तथा आप राज्य के अधिकार से च्युत

होकर वन में रह रहे हैं, फिर भी उसको आपसे भय है कि किसी भी दिन आप युद्ध में उसे परास्त करके अपना राज्य वापस ले सकते हैं। अत: उसका यह प्रयास है कि जिस राज्य को उसने जुए में छल-कपट से प्राप्त किया था, उसे वह नीति पर चलकर प्राप्त करे। दुर्योधन कुशल राजनीतिज्ञ है। उसने छल-कपट से राज्य तो प्राप्त कर लिया, किन्तु वह जानता है कि सत्ता तभी सुरक्षित रह सकती है,जब शासक जन-समर्थक प्राप्त करे। अत: वह अपने बन्धुजन, अमात्यवर्ग तथा प्रजा को सन्तुष्ट रखकर अपनी छवि सुधारना चाहता है। किरात ने दुर्योधन के इसी नीति-कौशल का यहाँ उल्लेख किया है।

संस्कृत-व्याख्या—नृपासनस्थ: अपि = सिंहासनाधिरूढोऽपि, सुयोधन: = दुर्योधन:, वनाधिवासिन: = अरण्यवासिन:, भवत: = युधिष्ठिरात्, पराभवम् = पराजयम्, विशंकमान: = आशंकमान:, दुरोदरच्छद्मजिताम् = द्यूत-कपट-प्राप्ताम्, जगतीं = पृथ्वीम्, नयेन = नीत्या, जेतुम् = प्राप्तुम्, समीहते = इच्छति। नयेन राज्यं स्वायत्तीकर्तुं प्रबलेच्छु: सुयोधन: साम्प्रतं नोदासीन: इत्याशय:।

कोष—'दुरोदरो द्यूतकारे पणे द्यूते दुरोदरम्' इत्यमर:। 'अक्षो दुरोदरं प्रोक्तम्' इति हलायुध:। 'जगतीविष्टपे मह्यां वास्तुच्छन्दो विशेषयो:' इति वैजयन्ती। 'पराभव: परिभव: परिभूति: पराजय:' इत्यमर:। 'कैतवं तु छले द्यूते कैतव: कितवे रिपौ', 'छद्म-शाठ्येऽपदेशे' इति मेदिनी।

अलंकार—'दुरोदरछद्मजिताम्' विशेषण पद द्वारा 'नयेन जेतुम्' के हेतु रूप में कथन से काव्यलिङ्ग अलंकार है, यथा-'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गमुदाहृतम्'।

टिप्पणी—(1) नृपासनस्थ:—नृपस्य आसनं नृपासनं (षष्ठीतत्पु.) तस्मिन्, तिष्ठतीति नृपासनस्थ: (उप. तत्पु.) नृपासन + स्था + क कर्त्तरि।

(2) सुयोधन: = सुखेन युध्यते इति सु + युध् + युच् कर्त्तरि सुयोधन: (उप. तत्पु.) आस्यते अत्र इति आसनम्—आस् + ल्युट्।

(3) वनाधिवासिन: = वनं अधिवसतीति वनाधिवासी (वन + अधि + वस् + णिनि) कर्त्तरि, तस्मात् (उप. तत्पु.)

(4) पराभवम् = परा + भू + अप्, भावे तम्।

(5) दुरोदरच्छद्मजिताम् = दुरोदरस्य छदम् इति दुरोदरछदम् तेन जिताम्, तत्पुरुष समास। जिताम् = जि + क्त + टाप् + ताम्।

(6) समीहते = सम् + ईह् + लट्, आत्मनेपद। नयेन = नी + अच्, तेन।

(7) विशङ्कमान: = वि + शंक + शानच्। जेतुम् = जि + तुमुन्।

Dec 2009
Sep. 2013
Jan. 2017

तथापि जिह्मः स भवज्जिगीषया,
तनोति शुभ्रं गुणसम्पदा यशः।
समुन्नयन् भूतिमनार्यसंगमाद्,
वरं विरोधाऽपि संम महात्मभिः॥8॥

अन्वयः—तथापि जिह्मः स भवज्जिगीषया गुणसम्पदा शुभ्रम् यशः तनोति, भूतिम् समुन्नयन् महात्मभिः समम् विरोधः अपि अनार्यसंगमात् वरम्।

शब्दार्थ—तथापिः = तो भी, आशंकित होता हुआ भी, जिह्मः = कुटिल, सः = वह (दुर्योधन), भवज्जिगीषया = आपको जीतने की इच्छा से, गुणसम्पदा = दया, उदारता आदि गुणों की सम्पत्ति से, शुभ्रम् = स्वच्छः, यशः = कीर्ति, तनोति = फैला रहा है, अनार्यसङ्गमात् = दुर्जन की संगति से, महात्मभिः समम् = सज्जनों के साथ, विरोधोऽपि = विरोध भी, वरम् = श्रेष्ठ होता है।

अनुवाद—आशंकित रहते हुए भी वह कुटिल दुर्योधन आपको जीतने के इच्छा से सद्गुणों का प्रदर्शन करता हुआ निर्मल यश का विस्तार कर रहा है। ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले महात्माओं के साथ विरोध करना भी दुष्ट व्यक्ति की संगति की अपेक्षा अच्छा है।

भावार्थ—यद्यपि दुष्ट दुर्योधन आपसे सदैव आशंकित रहता है तथा वह कुटिल भी है, तथापि वह अपनी धूर्तता को छिपाता हुआ सबके सामने दया-उदारता आदि गुणों को प्रकट करके आपसे भी अपना गुणोत्कर्ष दिखाना चाह रहा है। यह उसके राजनीतिक कौशल का ही एक अंग है। दुर्योधन के व्यवहार में आए अप्रत्याशित परिवर्तन का मुख्य कारण पाण्डवों के साथ प्रतिस्पर्द्धा है। इस प्रसंग में कवि किरात के मुख से इस सत्य का उद्घोष करता है कि दुर्जनों के साथ मित्रता से तो सज्जनों के साथ वैर भी लाभदायक होता है, क्योंकि सत्पुरुषों से स्पर्धा करने के लिए दुर्जनों को भी दिखावटी तौर पर ही सही, कुछ गुण अपनाने ही पड़ते हैं। इस प्रकार उसका उदारतापूर्वक व्यवहार सज्जनता के कारण नहीं, अपितु स्वार्थ-सिद्धि के लिए है।

संस्कृत-व्याख्या—तथापि = आंशकितोऽपि, जिह्मः = कुटिलः, सः = दुर्योधनः, भवज्जिगीषया = भवतः युधिष्ठिरस्य जयकामनया, गुणसम्पदा = गुणवैभवेन, शुभ्रम् = निर्मलम्, यशः = कीर्तिम्, तनोति = विस्तारयति, भूतिम् = समृद्धिम्, समुन्नयन्= प्रवर्धयन्, महात्मभिः = सज्जनैः, समम् = सह, विरोधऽपि = विद्वेषोऽपि, अनार्यसङ्गमात् = दुर्जनसंगर्गात्, वरम् = उचिततरम्।

कोष—'साकं सत्रा समं सह' इत्यमरः। 'देवाद् वृते वरः श्रेष्ठे भिषु क्लीबं मनाक्प्रिये' इत्यमरः। 'जिह्मस्तु कुटिलेऽलसे', 'विभूतिभूतिरैश्वर्यम्' इति चामरः।

'गौरः श्वेत सितः शुभ्रो बलक्षो धवलोऽर्जुनः' इति हलायुधः।

अलंकार—भूतिसम्मुन्नयन-पदार्थ विशेषण द्वारा विरोध का हेतुत्व कथन होने से काव्यलिङ्ग अलंकार है, परन्तु मुख्यता अर्थान्तरन्यास अलंकार की है।

टिप्पणी—(1) भवज्जिगीषया = भवन्तं जेतुमिच्छया भवज्जिगीषा, तया।

(2) जिह्मः = जहाति सरलमार्गम् इति जिह्मः (हा+मनिन्)

(3) गुणसम्पदा = गुणानां सम्पत् (षः तत्पु.) तया करणे तृतीया।

(4) समुन्नयन् = सम + उत् + नी + शतृ। विरोधः = वि+रुध्+घञ्।

(5) भूतिम् = भू + क्तिन्, द्वितीया एकवचन।

(6) अनार्यसंगमात् = न आर्याः अनार्याः, तेषां सङ्गमः, तस्मात्।

(7) वरम् = वरणं वरः, वृञ् धातु+अप् प्रत्यय।

दुर्योधन ने

कृतारिषड्वर्गजयेन मानवी—
मगम्यरूपां पदवीं प्रापित्सुना।
विभज्य नक्तंदिवमस्तन्द्रिणा,
वितन्यते तेन नयेन पौरुषम्।। 9।।

अन्वयः—कृतारिषड्वर्गजयेन अगम्यरूपाम् मानवीम् पदवीम् प्रापित्सुना, अस्ततन्द्रिणा तेन नक्तंदिवम् विभज्य नयेन पौरुषम् वितन्यते।

शब्दार्थ—कृतारिषड्वर्गजयेन = काम क्रोधादि छः आन्तरिक शत्रुओं को जीतने वाले, अगम्यरूपाम् = सामान्य लोगों के द्वारा अप्राप्य रूप वाली, मानवीम् = मनु के द्वारा बताई गई, पदवीम् = प्रजापालन की पद्धति को, प्रपित्सुना = प्राप्त करने की इच्छा वाले, अस्ततन्द्रिणा = आलस्य रहित, तेन = उस दुर्योधन के द्वारा नक्तंदिवम् =रात-दिन को, विभज्य = ठीक विभाग करके, नयेन = नीति के द्वारा, पौरुषम् = पुरुषार्थ को, वितन्यते = बढ़ाया जा रहा है।

अनुवाद—काम क्रोधादि छह (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य) आन्तरिक शत्रुओं को जीतने वाला, साधारण जनों के द्वारा अगम्य मनु-प्रतिपादित शासन पद्धति को अपनाने की इच्छा वाला और आलस्य रहित वह दुर्योधन रात-दिन का ठीक विभाग करके नीतिपूर्वक अपने पुरुषार्थ को बढ़ा रहा है।

भावार्थ—भारतीय राजनीतिशास्त्र के अनुसार शासक को सदाचारी एवं जितेन्द्रिय होना चाहिए। अतः दुर्योधन भी क्राम क्रोधादि इन छह आन्तरिक शत्रुओं को अपने वश में करके मनु के द्वारा बताये गये मार्ग से, आलस्य रहित बना हुआ अब प्रजापालन के सभी

कार्यों का स्वयं सम्पादन करता है। किन्तु सभी कार्य एक साथ नहीं किए जा सकते हैं। अतः दिन में करने योग्य और रात्रि में करने योग्य कार्यों का विभाजन करके वह नीतिपूर्वक अपने पुरुषार्थ का विस्तार कर रहा है। इस प्रकार दुर्योधन आदर्श शासक की छवि बनाने के लिए आलस्य त्याग कर निरन्तर प्रजा पालन में जुटा रहता है।

संस्कृत-व्याख्या—सुयोधनः लोकप्रियतां प्राप्तुं, मनु-प्रतिपादितशासन-पद्धति-मनुसरतीति सूचयन् वनेचरः युधिष्ठिरम् आह—

कृतारिषड्वर्गजयेन = कृतः विहितः अरिषड्वर्गस्य कामक्रोधादिशत्रुषट्कस्य जयः विजयः येन, अगम्यरूपाम् = साधारणजनेन दुष्प्राप्याम्, मानवीम् पदवीम्ः = मनु प्रतिपादिताम् शासनपद्धतिम्, प्रपित्सुना = प्राप्तुमच्छिता, अस्ततन्द्रिणा = आलस्यरहितेन, तेन = दुर्योधन, नक्तंदिवम् = अहोरात्रम् विभज्य = सम्यक्तया विभागं कृत्वा, नयेन = नीत्या, पौरुषम् = कर्त्तव्यम्, वितन्यते = विस्तार्यते।

कोष—'पौरुषं पुरुषस्योक्ते भावे कर्मणि तेजसि' इति विश्वः। 'रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्वेषणदुर्हृदः' इत्यमरः। 'अथ दोषा च नक्तं च रजनाविनि' इति चामरः

अलंकार—सहेतुक वाक्यार्थ-कथन से काव्यलिङ्ग अलंकार है। 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिङ्गम्'।

टिप्पणी—(1) कृतारिषड्वर्गजयेन = षण्णां वर्गः षड्वर्गः (ष. त.) अरीणां षड्वर्गः, तस्य जयः, कृतः अरिषड्वर्गजयः येन (बहुव्रीहि समास) तेन।

(2) मानवीम् = मनोनिरयं मानवी, ताम् मानवीम् (मनु+अण्+ङीप्+स्त्रियाम्)

(3) अगम्यरूपाम् = न गम्यम् अगम्यं (नञ् समास) अगम्यं रूपं यस्याः सा अगम्यरूपा, ताम् अगम्यरूपाम् (बहुव्रहि)

(4) प्रपित्सुना = प्राप्तुम् इच्छुः प्रपित्सुः, तेन। प्र+पद्+सन्+उः।

(5) अस्ततन्द्रिणा = अस्ता तन्द्रा यस्य सः अस्ततन्द्री तेन (बहुव्रीहि)।

(6) पौरुषम् = पुरुषस्य कर्म पौरुषम्, पुरुष+अण् प्रत्यय।

(7) नक्तन्दिवम् = नक्तं च दिवा च इति नक्तन्दिवम् (द्वन्द्व समास)

(8) वितन्यते = वि+तन्+लट् लकार, कर्मवाच्य।

सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविनः,
समानमानान् सुहृदश्च बन्धुभिः।
स सन्ततं दर्शयते गतस्मयः,
कृताधिपत्यमिव साधु बन्धताम्।। 10।।

अन्वय:—गतस्मयः स सन्ततम् साधु अनुजीविनः प्रीतियुजः सखीनिव सुहृदः च बन्धुभिः समानमानान् (इव) बन्धुताम् कृताधिपत्यमिव दर्शयते।

शब्दार्थ—गतस्मयः = अभिमान रहित, सः = वह दुर्योधन, सन्ततम् = निरन्तर, साधु = भली प्रकार से, अनुजीविनः = सेवकों को, प्रीतियुजः = स्नेह भरे, सखीन् इव = मित्रों के समान, सुहृदः = मित्रों को, बन्धुभिः = भाइयों के समान, समानमानान् = समान सम्मान वाले, बन्धुताम् = बन्धुजनों को, कृताधिपत्यम् इव = शासन करते हुए के समान, दर्शयते = दिखाता है या प्रदर्शित करता है।

अनुवाद—अभिमान रहित वह दुर्योधन सदैव निष्कपट रूप से सेवकों के प्रति स्नेहयुक्त मित्रों जैसा व्यवहार करता है। मित्रों को बन्धुजनों जैसा सम्मान देता है और बन्धुगणों को शासन करते हुए सा दिखाता है।

भावार्थ—वनेचर दुर्योधन के प्रशासन व व्यवहार के विषय में प्रकाश डालते हुए कहता है कि उसके आचरण में बहुत कुछ परिवर्तन आ गया है। उसने अभिमान को त्याग दिया है तथा विनम्रतापूर्वक सबके साथ सद्व्यवहार करता है। सेवकों को प्रेमी सखाओं के समान, सखाओं को बन्धुओं की भाँति तथा बन्धुजनों को स्वामियों के तुल्य दिखा रहा है। नीतिनिपुण दुर्योधन का मानना है कि प्रजा अतीत की बातों को शीघ्र भूल जाती है। अतः उसका तात्कालिक मृदु व्यवहार उसे जन-सामान्य में लोकप्रिय बना देगा। इसी भावना से प्रेरित होकर वह नम्रता एवं आदर का अत्यधिक प्रदर्शन कर रहा है।

संस्कृत-व्याख्या—अस्मिन् श्लोके किरातेन सुयोधनस्य स्नेहपूर्णव्यवहारस्य वर्णनं क्रियते–

गतस्मयः = अभिमानरहितः, सः = दुर्योधनः, सन्ततम् = सर्वदा, साधु = सम्यक्तया, अनुजीविनः = सेवकान्, प्रीतियुजः = स्नेहयुक्तान्, सखीन् इव = मित्राणि इव, सुहृदश्च = मित्राणि च, बन्धुभिः = बान्धवैः, समानमानान् इव = तुल्यसत्कारान् इव, बन्धुताम् = बन्धुवर्गम्, कृताधिपत्यम् इव = प्राप्तराज्यप्रभुत्वान् इव, दर्शयते = प्रदर्शयते।

कोष—'सततं सन्ततमनिशं नित्यमजस्रं च शश्वदश्रान्तम्' इति हलायुधः। 'सुन्दर रुचिरं चारु सुषमं साधु शोभनम्' इत्यमरः।

'अनुजीवी सहायः स्यात्सेवकोऽनुचरोऽनुगः' इति हलायुधः। 'सेवकार्थ्यनुजीविनः' इत्यमरः।

अलंकार—सकारण कार्यसिध्यर्थ व्यवहार का वर्णन होने से समुच्चय अलंकार है।

टिप्पणी—(1) गतस्मयः = गतः स्मयः यस्य सः (बहुव्रीहि)

(2) सन्ततम् = सम्+तन्+ क्त कर्मणि।

(3) अनुजीविनः = अनुजीवन्तीति अनुजीविनः। अनु+जीव्+णिनी प्रत्यय।

(4) प्रीतियुजः = प्रीत्या युज्यन्ते ये तान्। प्री+क्तिन्+युज्+क्विप्।

(5) सुहृदश्च = सुशोधनं हृदयं येषा ते तान्।

(6) बन्धुभिः = बध्यनन्ति प्रेम्णा इति बन्धवः, तैः (बन्ध+उण) सहार्थे तृतीया।

(7) समानमानान् = समानं मानः येषां तान् (बहुब्रीहि)।

(8) बन्धुताम् = बन्धूनां समूहः बन्धुता। (बन्धु+तल्+टाप्)।

(9) कृताधिपत्यमिव = कृतम् आधिपत्यम् येन, ताम् (बहुब्रीहि) अधिपातीति अधिपतिः (अधिः+पा+इति कर्त्तरि) तस्य भावः आधिपत्यम्। अधिपति+ष्यञ्।

(10) दर्शयन्ते = दृश्+णिच्+लट् लकार।

विशेष—वनेचर का कथन है कि दुर्योधन नीतिचातुर्य अपनाते हुए भृत्य, सुहृद तथा बान्धवादि से इस तरह का व्यवहार कर रहा है, जिससे वे स्वयं को सम्मानित मानने लगते हैं। इससे वे शासन-तन्त्र के प्रति अधिक निष्ठा रखने लगते हैं तथा कर्त्तव्यपालन में सदैव जागरूक रहते हैं।

असक्तमाराधयतो यथायथं,
विभज्य भक्त्या समपक्षपातया।
गुणनुरागादिव सख्यमीयिवान्
न बाध्यतेऽस्य त्रिगणः परस्परम्।। 11।।

अन्वयः—यथायथम् विभज्य समपक्षपातया भक्तया असक्तम् आराधयतः। अस्य त्रिगणः गुणानुरागत् सख्यम् ईयिवान् इव परस्परम् न बाधते।

शब्दार्थ—यथायथम् = उचित रूप से, विभज्य = विभाग करके, समपक्षपातया = समान पक्षपात वाली, भक्तया = स्नेह भाव से, असक्तम् = आसक्ति रहित होकर, आराधयतः= सेवन करते हुए, अस्य = इस दुर्योधन के, त्रिगणः = धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों का वर्ग, गुणानुरागत् = गुणों के प्रेम से, सख्यम् = मित्रता को, ईयिवान् इव = प्राप्त हुए के समान, परस्परम् = आपस में, न बाधते = एक दूसरे का विरोध नहीं करते।

अनुवाद—समुचित रूप से विभाजन करके समान पक्षपात वाली भावना से अनासक्ति पूर्वक सेवन करते हुए इस (दुर्योधन) के गुणों के प्रेम से त्रिगण अर्थात् धर्म, अर्थ और काम तीनों मित्रता को प्राप्त हुए के समान एक दूसरे का विरोध नहीं करते।

भावार्थ—भारतीय संस्कृति में जीवन में चार पुरुषार्थ माने गए हैं। इनमें मोक्ष ही चरम लक्ष्य है। लौकिक जीवन के तीन लक्ष्य हैं—धर्म, अर्थ और काम। इनकी सन्तुलित

उपलब्धि में ही जीवन की सफलता व व्यक्तित्व का पूर्ण विकास निर्भर है। वनेचर कहता है कि इसी कारण दुर्योधन भी अपने शासन के अन्तर्गत धर्म, अर्थ और काम रूपी त्रिवर्ग का पूर्ण ध्यान रखे हुए है। तीनों के प्रति समान भाव रखते हुए वह उनका सेवन कर रहा है। उसके यहाँ धर्म सेवन के समय अर्थ और काम से कोई बाधा नहीं पहुँचती, न अर्थोपार्जन में धर्म और काम बाधा डालते हैं, काम के सेवन में अर्थ एवं धर्म का कोई विरोध नहीं होता। समान रूप से सेवन के कारण तीनों ही निर्बाध रूप से उसके राज्य में वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं। कवि की मान्यता है कि मानों ये तीनों ही दुर्योधन के गुणानुराग से आकृष्ट होकर उसमें निवास करने के लिए अपनी सहज शत्रुता त्याग कर मित्र बन गए हैं।

संस्कृत-व्याख्या—दुर्योधनस्य सन्तुलितरूपेण पुरुषार्थत्रय-साधनां वर्णयन् किरातः कथयति—

यथायथम् = उचितरूपेण, विभज्य = विभागं कृत्वा, समपक्षपातया = समान-व्यवहारेण, भक्तया = स्नेहेन, असक्तम् = अनासक्तम्, आराधयतः = साधयतः, अस्य = दुर्योधनस्य, त्रिगणः = धर्म-अर्थ-कामरूपः, सख्यम् = मैत्रीम्, ईयिवान् इव = प्राप्तवान् इव, परस्परम् = अन्योन्यम्, न बाधते = बाधां न करोति।

कोष—'परस्परं मिथः प्रोक्तमन्योन्यमितरेतरम्' इति हलायुधः। 'यथार्थं तु यथायथम्' इत्यमरः। 'सेवा भक्तिरूपास्तिः प्रसादनाराधनोपचाराश्च' इति हलायुधः।

अलंकार—'गुणानुरागादिव सख्यम्' इत्यादि में सम्भावनात्मक वर्णन होने से उत्प्रेक्षा अलंक्रार है। 'सम्भावनामथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्'।

टिप्पणी—(1) असक्तम् = न सक्तः असक्तः (नञ् तत्पु.) तद्यथा स्यात्तथा। सञ्ज् + क्त + सक्तः।

(2) आराधयतः = आ+राध्+णिच्+लट्+शतृ (ष.वि.)।

(3) समपक्षपातया = समः प्रक्षपातः यस्याः सा तया (बहुब्रीहि)।

(4) भक्त्या = भज् + क्तिन् प्रत्यय भक्तिः, तया।

(5) त्रिगणः = त्रयाणां गणः त्रिगणः (ष. तत्पु.)।

(6) गुणानुरागात् = गुणेषु अनुरागः गुणानुरागः, (षष्ठी तत्पुरुष) तस्मात् गुणानुरागात्।

(7) संख्यम् = सख्युः भाव सख्यम्, सखि यत् प्रत्यय।

(8) ईयिवान् = इण् गतौ धातु से 'लिट्ः स्थाने क्वसु' सूत्र से निपातनात् यह सिद्ध होता है।

विशेष—आशय यह है कि जब दुर्योधन धर्म करता है, तो उस समय अर्थ और काम उसके मार्ग में बाधक नहीं बनते हैं। जब वह अर्थोपार्जन का कार्य करता है, तब धर्म और काम विघ्न नहीं डालते हैं। काम के सेवन में भी धर्मार्थ बाधक नहीं बनते थे। अतः उसके त्रिवर्ग परस्पर बिना बाधा के बढ़ते रहते हैं, यह एक श्रेष्ठ राजा का गुण होता है।

निरत्ययं साम न दानवर्जितं,
न भूरि दानं विरहय्य सत्क्रियाम्।
प्रवर्तते तस्य विशेषशालिनी
गुणानुरोधेन विना न सत्क्रिया।। 12 ।।

अन्वयः—तस्य निरत्ययम् साम दानवर्जितम् न, भूरि दानम् सत्क्रियाम् विरहय्य न, विशेषशालिनी सत्क्रिया गुणानुरोधेन विना न प्रवर्तते।

शब्दार्थ—तस्य = उस दुर्योधन का, निरत्ययम् = निष्कपट, साम = मधुर वचन, दानवर्जितम् = दान रहित, न प्रवर्तते = प्रवृत्त नहीं होता, भूरिदानम् = प्रचुर मात्रा में दान, सत्क्रियां विरहय्य = सत्कार के बिना प्रवृत्त नहीं होता, विशेषशालिनी = विशेषतायुक्त, सत्क्रिया = आदर, गुणानुरोधेन विना = गुणानुरोधन के बिना, न प्रवर्तते = प्रवृत्त नहीं होता है।

अनुवाद—उस दुर्योधन का निष्कपट मधुर वचन बिना दान के नहीं होता, प्रचुर दान आदर सत्कार को छोड़कर नहीं होता तथा किसी का विशेष आदर गुणों का मूल्यांकन किए बिना नहीं होता है।

भावार्थ—इस श्लोक में राजा दुर्योधन के द्वारा अपने परिजनों का हृदय जीतने के लिए साम, दान आदि प्रयासों का वर्णन किया गया है। वह उनसे मधुर वचन बोलता है, केवल प्रिय भाषण से ही सेवक सन्तुष्ट नहीं होते। अतः वह उन्हें उचित पुरस्कार आदि भी देता है। स्वाभिमानी व्यक्ति धन-लाभ को उतना महत्त्व नहीं देते, जितना सम्मान प्राप्ति को देते हैं। अतः वह पूर्ण सम्मान के साथ उन्हें धन देता है, केवल गुणिजन ही दुर्योधन के इस विशिष्ट सम्मान के पात्र होते हैं। अतः वह गुणग्राहक शासक है।

संस्कृत-व्याख्या—दुर्योधनः गुणिजनानां मधुरवचनैः पुरस्कारादिभिश्च सम्मानं करोति इति वर्णयन् किरातः कथयति–

तस्य = दुर्योधनस्य, निरत्ययम् = दोषरहितम्, साम = मधुवरवचनम्, दानवर्जितम् = पुरस्कारादिरहितम् न प्रवर्तते, भूरिदानम् = प्रचुरधनदानम् अपि, सत्क्रियाम् = आदरम्, विरहय्य = त्यक्त्वा न प्रवर्तते। तस्य विशेषशालिनी = वैशिष्ट्ययुक्ता, सत्क्रिया = सत्कारः, गुणानुरोधेन बिना = गुणानुरोगन विना, न प्रवर्तते = नैव प्रचलति।

कोष—'साम सान्त्वमिति स्मृतम्' इति हलायुधः।'साम सान्त्वयुभे समे' इत्यमरः। 'प्राज्यं भूरि प्रभूतं च प्रचुरं बहुलं बहु' इति हलायुधः।'अनुरोधोऽनुवर्तनम्' इत्यमरः।

अलंकार—उत्तर-उत्तर कथन का पूर्व-पूर्व विशेषण रूप में कथन होने से एकावली अलंकार है। काव्यप्रकाश में इसका लक्षण है—

"स्थाप्यतेऽपोह्यते वापि यथापूर्वं परं परम्।
विशेषणतया यत्र वस्तु सैकावली द्विधा।।"

टिप्पणी—(1) निरत्यम् = निर्गतः अत्ययः यस्मात् तत् (बहुव्रीहि)। निर् + अति + अय् + अच्।

(2) दानवर्जितम् = दानेन वर्जितम् (तृ. तत्पु.) दा + ल्युट् भावे दानम्, वृज + णिच् + क्त कर्मणि वर्जितम्।

(3) सत्क्रियाम् = सती क्रिया सत्क्रिया ताम् (कर्मधारय)।

(4) विरहय्य = वि + रह + णिच् + क्त्वा (ल्यप्)।

(5) विशेषशालिनी = वि + शिष् + घञ् + शाल् + णिनि।

(6) गुणानुरोधेन = गुणानां अनुरोधः। अनु + रुध् + घञ् । भावे अनुरोधः (ष. त.) तेन।

(7) प्रवर्तते = प्र + वृत् + लट् + आत्मनेपदम्।

विशेष—दान की प्रशस्तता को लक्ष्य कर नीतिशास्त्र में कहा गया है—

"लुब्धमर्थेन गृह्णीयात्साधुमञ्जलिकर्मणा।
मुखछन्दानुरोधेन तत्त्वार्थेन च पण्डितम्।।"

वसूनि वाञ्छन्न वशी न मन्युना,
स्वधर्म इत्येव निवृत्तकारणः।
गुरूपदिष्टेन रिपौ सुतेऽपि वा
निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम्।। 13।।

अन्वयः—स वशी वसूनि वाञ्छन् न, मन्युना न, (किन्तु) निवृत्तकारणः (सन्) स्वधर्म इत्येव गुरूपदिष्टेन दण्डेन रिपौ सुतेऽपि वा धर्मविप्लवम् निहन्ति।

शब्दार्थ—सः = वह, वशी = जितेन्द्रिय (दुर्योधन), वसूनि = धन, वाञ्छन् = चाहता हुआ, न = दण्ड प्रयोग नहीं करता, मन्युना न = क्रोध से प्रेरित होकर भी नहीं, निवृत्तकारणः = लोभ, क्रोध आदि कारणों से मुक्त रहता हुआ, स्वधर्म इत्येव = मेरा धर्म है, यह समझकर, गुरूपदिष्टेन = धर्माधिकारी द्वारा निर्दिष्ट, दण्डेन = दण्ड व्यवस्था

द्वारा, रिपौ = शत्रु, सुतेऽपि वा = अथवा पुत्र में भी, धर्मविप्लवम् = धर्म के उल्लंघन को, निहन्ति = रोकता है।

अनुवाद—वह जितेन्द्रिय दुर्योधन धन का लोभ न करता हुआ और न क्रोध के कारण ही (किसी को दण्ड देता है) अपितु 'यह मेरा धर्म है' यह समझकर धर्माधिकारी द्वारा निर्दिष्ट दण्ड से शत्रु और पुत्र में भी धर्म के उल्लंघन को रोकता है।

भावार्थ—राजा दुर्योधन आदर्श शासक की भाँति कर्त्तव्य भावना से दण्ड प्रयोग करता है। दुष्ट शासक कभी क्रोध से एवं कभी लोभ से प्रेरित होकर दण्ड-शक्ति का अनुचित प्रयोग करते हैं, किन्तु आदर्श शासक शास्त्रोक्त दण्डविधान से अपराध का नियंत्रण करते हैं। अपराधी चाहे शत्रु हो, चाहे पुत्र हो, इस ओर ध्यान न देकर वे तो निष्पक्ष होकर न्याय करते हैं। धर्म के उल्लंघन को रोकना ही न्यायोचित दण्ड का उद्देश्य होता है। भारतीय राजनीतिशास्त्र के इस सिद्धानत की ओर यहाँ संकेत किया गया है।

संस्कृत-व्याख्या—सः = दुर्योधनः, वशी = जितेन्द्रियः, वसूनि = धनानि, वाञ्छन् = इच्छन्, न = नैव, मन्युना = क्रोधेन, न = नहि, किन्तु = परन्तु, निवृत्तकारणः = लोभ-क्रोध-रूपनिमित्तरहितः सन्, स्वधर्मः = मर्म राजधर्मः, इति एव = एवं विचार्य एव, गुरूपदिष्टेन = गुरुजनप्रदिष्टेन, दण्डेन = शासनेन, रिपौ = शत्रौ, सुतेऽपि वा = पुत्रेऽपि, धर्मविप्लवम् = धर्मस्य अतिक्रमम्, निहन्ति = नाशयति।

कोष—'वसु तोये धने मणौ' इति वैजयन्ती।

'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इत्यमरः। 'अभियातिररातिरमित्ररिपू' इति हलायुधः। 'आन्मजस्तनयः सूनुः सुतः पुत्र. इत्यमरः'।

अलंकार—वर्णावृत्ति से अनुप्रास अलंकार तथा सहेतुक वाक्यार्थोपन्यास से काव्यलिङ्ग अलंकार है।

टिप्पणी—(1) वशी=वशः अस्ति अस्येति वश + इनि मत्वर्थ।

(2) वाञ्छन् = वाच्छतीति वाञ्छन्, वाञ्छ् + शतृ।

(3) निवृत्तकारणः = निवृत्तं कारणं यस्य सः (बहुब्रीहि)। नि + वृत् + क्त कर्त्तरि = निवृत्त, कृ + णिच् + ल्युट् = कारण।

(4) गुरूपदिष्टेन = गुरुभिः उपदिष्टः गुरूपदिष्टः तेन (तत्पुरुष)।

(5) धर्मविप्लवम् = धर्मस्य विलप्वः धर्मविप्लवः तम् (ष. तत्पु.)।

(6) निहन्ति = नि + हन् धातु + लट् लकार प्र. पु. एकवचन।

विशेष—स्मृतिशास्त्र में दण्डविधान को लेकर कहा गया है—

"अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोनिति नरकं चैव गच्छति।''

नारदस्मृति में गुरूपदिष्ट दण्ड-विधान से सम्बन्ध में कहा गया है—

"धर्मशास्त्रं पुरस्कृत्य प्राड्विवाकमते स्थितः।
समाहितमतिः पश्येद् व्यवहाराननुक्रमात्।।"

विधाय रक्षान्परितः परेतरा-
नशङ्किताकारमुपैति शंकितः।
क्रियापवर्गेष्वनुजीविसात्कृताः
कृतज्ञतामस्य वदन्ति सम्पदः।। 14।।

अन्वयः—शंकितः परितः परेतरान् रक्षान् विधाय अशङ्किताकारम् उपैति, क्रियापवर्गेषु अनुजीविसात्कृताः सम्पदः अस्य कृतज्ञताम् वन्दति।

शब्दार्थ—शंकितः = शंकाग्रस्त हुआ भी (वह दुर्योधन), परितः = चारों ओर, परेततारान्= विश्वस्त जनों को, रक्षान् = रक्षक रूप में, विधाय = नियुक्त करके, अशङ्किताकारम् = निर्भय आकार को, उपैति = प्राप्त करता है, क्रियापवर्गेषु = कार्यों की समाप्ति पर, अनुजीविसात्कृता = सेवकों को प्रदान की गई, सम्पदः = सम्पत्तियाँ, अस्य = इस दुर्योधन की, कृतज्ञताम् = कृतज्ञता को, वन्दति = ज्ञापित करती हैं।

अनुवाद—शंकाग्रस्त हुआ भी वह दुर्योधन चारों ओर विश्वस्त जनों को रक्षक रूप में नियुक्त करके स्वयं निःशंक सा रहता है। कार्यों की समाप्ति पर सेवकों को दी हुई सम्पत्तियाँ उसकी कृतज्ञता ज्ञापित करती हैं।

भावार्थ—वनेचर दुर्योधन की भेदनीति संबंधी चातुर्य का वर्णन करते हुए कहता है कि दुर्योधन भेदनीति में निपुण है। अतः वह शत्रुओं से सदैव सावधान रहता है। स्वपक्ष तथा शत्रुपक्ष में अपने विश्वस्त व्यक्तियों को नियुक्त करके निःशंक व्यक्ति के तुल्य घूमता है। जब उसका कार्य सिद्ध हो जाता है, तब सेवकों को केवल मधुर वाणी मात्र से ही सन्तुष्ट नहीं करता, क्योंकि वह इस तथ्य से अवगत है कि भृत्यगण सदैव सम्मान आदि से सन्तुष्ट होकर ही अपने स्वामी का हित साधन करने में तत्पर रहते हैं। अतः कार्यों की पूर्ति होते ही अपने सेवकों को पर्याप्त पुरस्कार प्रदान करता है। ऐसा कृतज्ञ शासक अपने सेवकों का हृदय जीत लेता है।

संस्कृत-व्याख्या—शङ्कितः = सन्देहयुक्तः स दुर्योधनः, परितः = सर्वतः, परेतरान् = आत्मीयजनान् रक्षान् = रक्षकान्, विधाय = कृत्वा, अशङ्किताकारम् = निर्भयमिव, उपैति = प्राप्नोति, क्रियापवर्गेषु = कार्यावसानेषु, अनुजीविसात्कृताः = सेवकेभ्यः प्रदत्ताः, सम्पदः = सम्पत्तयः, अस्य = दुर्योधनस्य, कृतज्ञताम् = उपकारज्ञताम्, वन्दति = कथयन्ति।

कोष—'मुक्तिः कैवल्यनिर्वाणश्रेयोनिःश्रेयसामृतम्। मोक्षोऽपवर्गः' इत्यमरः।
'लक्ष्मीः श्रीशोभासम्पत्प्रियंगुषु' इति हेमचन्द्रः।

अलंकार—वर्णावृत्ति से अनुप्रास अलंकार है। नीति-प्रयोग में दुर्योधन की निपुणता की अभिव्यक्ति होने से विशेष अलंकार है।

टिप्पणी—(1) शंकितः = शंका संजाता अस्य इति, शंका + इतच्।

(2) अशंकिताकारम् = न शंकितः अशंकितः (नञ् समास), अशंकितस्य आकारः (ष. तत्पु.) तम्। आकारः = आ + कृ + घञ्।

(3) परेतरान् = परेभ्यः इतरे परेतरे, तान्। तत्पु. समास।

(4) रक्षान् = रक्षन्तीति रक्ष + अच् + रक्षाः तान्।

(5) क्रियापर्वेषु = कियाणाम् अपवर्गाः (ष. तत्पु.) तेषु क्रियापवर्गेषु। अपवृज्यते मुच्यते जगद् अनेन इति अपवर्गः, अपवर्ग = अप + वृज् + घञ्।

(6) अनुजीविसात्कृता = अनु पश्चात् जीवन्तीनि अनुजीविनः तेभ्यः सात्कृता= प्रदत्ताः। यहाँ सह सुपा से समास हुआ है। अनुजीविभ्यः देय करोति इति अनुजीविसात् करोति। अनु + जीव + णिनि = अनुजीविन् + साति + कृताः - कृ + क्त + टाप्।

(7) कृतज्ञताम् = कृ + ज्ञा + क = कृतज्ञ + तल् + टाप्, ताम्।

अनारतं तेन पदेषु लम्भिता,
विभज्य सम्यग्विनियोगसत्क्रियाः।
फलन्त्युपायाः परिबृंहितायती-
रुपेत्य सङ्घर्षमिवार्थसम्पदः ॥ 15 ॥

अन्वयः—तेन पदेषु सम्यक् विभज्य लम्भिताः विनियोगसत्क्रियाः उपायाः सङ्घर्षमुपेत्य इव परिबृंहितायतीः अर्थसम्पदः अनारतम् फलन्ति।

शब्दार्थ—तेन = उस दुर्योधन के द्वारा, पदेषु = उचित स्थानों में, सम्यक् = अच्छी प्रकार से, विभज्य = विभाग करके, विनियोगसत्क्रियाः = उचित उपयोग और सम्मान, लम्भिता = अच्छी प्रकार प्रयुक्त, उपायाः = साम, दाम आदि उपाय, संघर्षम् = स्पर्धा को, उपेत्य इव = प्राप्त हुए से, परिबृंहितायतीः = सदैव वृद्धि को प्राप्त होने वाली, अर्थसम्पदः = धन सम्पत्तियों को, अनारतम् = निरन्तर फलन्ति = फलती है।

अनुवाद—उस दुर्योधन द्वारा कर्मों में भली-भाँति विभक्त करके समुचित उपयोग सत्कार को प्राप्त कराये गये साम, दाम, दण्ड, भेद आदि उपाय मानों परस्पर स्पर्धा को प्राप्त हुए से भविष्य में सदैव वृद्धि को प्राप्त होने वाली सम्पत्तियों को बढ़ाने में लगे हुए हैं।

भावार्थ—सही स्थानों पर उपर्युक्त उपायों का प्रयोग स्थायी सफलता प्रदान करता है। अतः दुर्योधन किस समय किस उपाय से काम लेना चाहिए, इस प्रकार का विवेचन करके तदनुसार बड़ी सावधानी से चलता है। वह देश–काल, पात्रादि के अनुसार ठीक-ठीक विभाजन करके, इन चारों उपायों को उनके उचित स्थानों पर ही प्रयुक्त करता है। फलस्वरूप वे उपाय उसे स्थिर रहने वाली अधिकाधिक धन–सम्पत्ति प्रदान करते रहते हैं। उसे अपने किसी भी कार्य में असफलता प्राप्त नहीं होती।

संस्कृत-व्याख्या—तेन = दुर्योधनेन, पदेषु = कर्त्तव्यस्थलेषु, सम्यक् = साधु, विभज्य = विभागं कृत्वा, विनियोगसत्क्रियाः = समुचितप्रयोगरूपसत्कारं, लम्भिताः = प्रापिताः, उपायाः = सामदामादयः सङ्घर्षम् = स्पर्धाम्, उत्पेत्य इव = प्राप्य इव, परिबृंहितायतीः = चिरस्थायिनीः, अर्थसम्पदः = धन–सम्पायिः, अनारतम् = सततम्, फलन्ति = फलं ददति।

कोष—''पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु'' इत्यमरः।

'सम्पत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च' इत्यमरः।

'भेदो दण्डः साम दानमित्युपायचतुष्टयम्' इत्यमरः।

अलंकार—'संघषमेत्य इव' में सम्भावनात्मक वर्णन होने से उत्प्रेक्षा अलंकार है, यथा–'सम्भावनमथोत्प्रेक्षा'।

''मन्ये शंके ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादयः। उत्प्रेक्षा व्यञ्जकाः शब्दा इव शब्दोऽपि तादृशः।।''

टिप्पणी—(1) विनियोगसत्क्रियाः—वि+नि+युज्+घञ् भावे, विनियोग एव सत्क्रियाः (शाकपार्थिवादिवत् या मयूरव्यंकादिवत् कर्मधारय) अथवा विनियोगः सत्क्रिया यासां ताः (ब्रहुब्रीहि)।

(2) लम्भिताः = लभ् + णिच् + क्त (कर्मणि) ताः।

(3) उपायाः = उपैति उपायते वा एभिः इति उपायाः। (उप+इ+अच् अथवा उप +अय्+घञ् करणे)।

(4) संघर्षमुपेत्य = सम् + घृष् + घञ् भावे, तम् संघर्षम्। उत्पेय = उप + इ + त्वा–ल्यप्।

(5) परिबृंहितायतीः = परि+बृंह+णिच्+क्त कर्मणि स्त्रियाम् आ + यम् + क्तिन्। परिबृंहिता आयाति याभिः ताः।

(6) अर्थसम्पदः = अर्थानां सम्पदः (ष. त.) ताः सम्पन्ना अर्था इत्यर्थः। सम्+पद्+क्विप् भावे सम्पदः।

(7) अनारतम् = आ+रम्+क्त कर्त्तरि आरतम् न आरतम् इति अनारतम् (नञ् तत्पुरुष) तत् यथा तथा अनारतम्।

विशेष—राजनीति में चार उपाय मुख्यत: माने जाते हैं—साम, दान, भेद और दण्ड-विधान। इनके साथ ही तीन उपाय और होते हैं—माया, उपेक्षा एवं इन्द्रजाल। इस प्रकार सात उपाय माने जाते हैं। यथा—

"साम दानं च भेदश्च दण्डश्चेति चतुष्टयम्।
मायोपेक्षेन्द्रजालं च सप्तोपाया: प्रकीर्तिता:।।"

मनुस्मृति में कहा गया है कि राजा को उपायचतुष्दय में पण्डित होना चाहिए—
"सामादीनामुपायानां चतुर्णामपि पण्डिता:।" (मनु. 7/109)

अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलं
तदीयमास्थाननिकेतनाजिरम्।
नयत्ययुग्मच्छदगन्धिरार्द्रतां,
भृशं नृपोपायनदन्तिनां मद:।। 16 ।।

अन्वय:—अयुग्मछदगन्धि: नृपोपायनदन्तिनां मद: अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलं तदीयम् आस्थाननिकेतनाजिरं भृशम् आर्द्रतां नयति।

शब्दार्थ—अयुग्मछदगन्धि: = सप्तपर्ण वृक्ष के पुष्प के गन्ध के समान गन्धवाला, नृपोपायनदन्तिानां = राजाओं के उपहार स्वरूप हाथियों का, मद: = मद जल, अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलम् = अनेक राजाओं के रथ घोड़ों से भरे हुए, तदीयम् = उस दुर्योधन के, आस्थाननिकेतनाजिरम् = सभामण्डप के आँगन को, भृशम् = अत्यधिक, आर्द्रताम् = गीलेपन को, नयति = पहुँचा देता है।

अनुवाद—सप्तपर्ण पुष्प की गन्ध के समान गन्धवाला राजाओं के उपहारस्वरूप हाथियों का मदजल बहुत से राजाओं के रथ और घोड़ों से भरे हुए उस दुर्योधन के सभा भवन के आँगन को अत्यधिक गीला कर देता है।

भावार्थ—वनेचर ने दुर्योधन के राजवैभव एवं प्रभाव का वर्णन करते हुए दो बातों का विशेष उल्लेख किया है—(1) बहुमूल्य गजों के उपहार के रूप में प्राप्ति, (2) सेवोद्यत क्षत्रियों के वाहनों से राजभवन के प्रागंण का सदा भरा रहना। अनेक राजा लोग दुर्योधन को उपहारस्वरूप मदमस्त हाथी भेंट करते हैं, भेंट किए गए उन हाथियों से मदजल चूता रहता है, जिससे उसके सभागृह का आँगन अत्यधिक गीला हो जाता है। इसके अलावा सुयोधन से भेंट करने के लिए इतने क्षत्रिय आते हैं कि आस्थान भवन का बाहरी प्रांगण उनके वाहनों से सदैव भरा रहता है।

संस्कृत-व्याख्या—अयुग्मछदगन्धिः = सप्तपर्णपुष्पवत्सुरभिः, नृपोपायनदन्तिनाम् = नृपाणां राज्ञाम् उपायनानि उपहारभूता ये दन्तिनः गजाः तेषाम्, राजोपहारगजानाम्, मदः = मदजलम्, अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलम् = अनेकक्षत्रियरथाश्वव्याप्तम्, तदीयम् आस्थाननिकेतनाजिरम् = सभामण्डपप्रांगणम्, भृशम् = अत्यन्तम्, आर्द्रताम् = क्लिन्नताम्, नयति = प्रापयति।

कोष—उपायनमुपग्राह्यमपुहारस्तथोपदा इत्यमरः। 'दन्ती दन्तावलो हस्ती द्विरदोऽनेकपो द्विपः' इत्यमरः।

अलंकार—इस श्लोक में महान् ऐश्वर्य का वर्णन होने से 'उदात्त' अलंकार है। **लक्षण**—"लोकातिशयसम्पत्तिर्वर्णनोदात्तमुच्यते।" (साहित्यदर्पण)

टिप्पणी—(1) अयुग्मछदगन्धिः = अयुग्मछदस्य गन्ध इव गन्धः यस्य सः। बहुब्रीहि समास।

(2) नृपोपायनदन्तिनाम् = नृपाणाम् उपायनानि ये दन्तिनः, नृपोपायनदन्तिनः तेषाम्। कर्मधारय समास।

(3) अनेकराजन्यरथाश्वसंकुलम् = अनेकेषां राजन्यानां रथाश्वैः संकुलम्। तत्पुरुष समास।

(4) आर्द्रताम् = आर्द्रस्य भावः आर्द्रता तां (आर्द्र + तल्)।

(5) तदीयम् = तस्य इदम् तदीयत् (तद् + छ)।

(6) आस्थाननिकेतनाजिरम् = आस्थीयते अस्मिन् इति आस्थानम् आ + स्था + ल्युट् अधिकरणे, निकित्यते अस्मिन् इति नि + कित् + ल्युट् अधिकरणे निकेतनम्। आस्थानस्य निकेतनम् तस्य अजिरम् (षष्ठी तत्पुरुष)।

सुखेन लभ्या दधतः कृषीवलै—
रकृष्टपच्या इव सस्यसम्पदः।
वितन्वति क्षेममदेवमातृका—
श्चिराय तस्मिन् कुरवश्चकासति।। 17।।

अन्वयः—चिराय तस्मिन् क्षेमम् वितन्वति अदेवमातृकाः कुरवः अकृष्टपच्या इव कृषीवलैः सुखेन लभ्याः सस्यसम्पदः दधतः (सन्तः) चकासति।

शब्दार्थ—चिराय = चिरकाल तक, तस्मिन् = उस दुर्योधन के, क्षेमम् = मंगल, वितन्वति = उपाय करते रहने पर, अदेवमातृकाः = वर्षा पर निर्भर न रहने वाला, कुरवः = कुरु जनपद, अकृष्टपच्या इव = बिना जोते ही पकने वाली फसल की तरह, कृषीवलैः

= किसानों के द्वारा, सुखेन = आसानी से, लभ्या = प्राप्त होने वाली, सस्यसम्पदः = धान्य-समृद्धि को, दधतः = धारण करते हुए, चकासति = शोभित होता है।

अनुवाद—बहुत दिनों से प्रजाओं के हितार्थ उपाय करते रहने पर अदेव मातृक (वर्षा के जल से नहीं अपितु नहरों आदि के जल से सिंचाई के कारण उपजाऊ) कुरु जनपद बिना जोती हुई भूमि पर पकने वाली के समान तथा किसानों द्वारा बिना परिश्रम ही प्राप्त होने वाली धान्य-सम्पत्ति को धारण करता हुआ सुशोभित हो रहा है।

भावार्थ—यहाँ किरात यह संकेत देना चाहता है कि कुरु प्रदेश धनधान्य से सम्पन्न है और प्रजा राजा के कल्याण कार्यों से प्रसन्न है। अतः ऐसे राज्य को जीतना सरल कार्य नहीं है। दुर्योधन के द्वारा सस्य-वृद्धि के लिए नदी-कुल्यादि का प्रबन्ध कर प्रजा-कल्याण करने से, कुरु जनपद मेघादि पर निर्भर न रहकर किसानों द्वारा अनायास लभ्यधान्यादि सम्पत्तियों को धारण करते हैं और सुखी रहते हैं। अतः सम्पन्न जनपद वाला तथा जनहितकारी राजा होने से वह दुर्योधन दुःसाध ही है।

संस्कृत-व्याख्या—दुर्योधनस्य जनकल्याणयोजनाभिः प्रवर्धिता कुरुजनपदस्य कृषि-समृद्धिं वर्णयन् किरातः आह—

चिराय = चिरकालम्, तस्मिन् = दुर्योधने, क्षेमं वितन्वति = कल्याणं कुर्वति, अदेवमातृकाः = वृष्टिजलनिरपेक्षाः, कुरवः = कुरुनामकजनपदाः, अकृष्टपच्या इव = कर्षणं विनैव स्वतः पच्या इव, कृषीवलैः = कृषकैः, सुखेन = अनायासेन, लभ्याः = प्राप्याः, सस्यसम्पदः = धान्यसम्पत्तयः, दधतः = धारयन्तः, चकासति = शोभन्ते।

कोष—"देशो नद्यम्बुवृष्ट्यम्बु सम्पन्नब्रीहिपालितः। स्यान्नदीमातृको देवमातृकश्च यथाक्रमम्।।" इत्यमरः ।

'नद्यम्बुजीविनो देशो नदीमातृक उच्यते। वृष्टिनिष्पाद्यसस्यस्तु विज्ञेयो देवमातृकः।।' इति हलायुधः। 'क्षेत्राजीवः कर्षकश्च कृषकश्च कृषीबलः' इत्यमरः। 'चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चरार्थकाः' इति चामरः।

अलंकार—उत्प्रेक्षा-व्यंजक 'इव' शब्द का सम्भावनार्थ प्रयोग होने से उत्प्रेक्षा अलंकार है।

टिप्पणी—(1) क्षेमम् = क्षयति अशुभम् इति क्षेमः। क्षयार्थक स्वादिगणीय 'क्षि' धातु से ओणादिक मन् प्रत्यय द्वितीय एकवचन।

(2) वितन्वति = वि + तन् + शतृ = वितन्वन् तस्मिन् (सप्तमी एकवचन)।

(3) अदेवमातृकाः = देवः माता येषां ते (बहुब्रीहि), न तथा अदेवमातृकाः (नञ् तत्पु.), यह कुरव का विशेषण है।

(4) अकृष्टपच्या = कृष्टेन पच्यते इति कृष्टपच्या: (उपपद समास), न कृष्टपच्या: इति अकृष्टपच्या = (नञ् समास), कृष + क्त प्रत्यय।

(5) कुरव: = कुरूणां निवास: कुरव:। 'तस्य निवास:' सूत्र से अण् प्रत्यय, कुरु + अण्।

(6) कृषीवलै: = कृषि + वलच् तृतीया।

(7) लभ्या: = लब्धुं शक्या इति लभ् + यत् कर्मणि ता:।

(8) शस्यसम्पद: = शस्यानां सम्पद: शस्यसम्पद: (ष. तत्पुरुष) अथवा शस्यानि एव सम्पद: शस्यसम्पद:, ता: शस्य सम्पद: (कर्मधारय समास)।

(9) दधत: = धा + शतृ प्रत्यय। प्रथमा विभक्ति बहुवचन।

(10) चकासति = अदादिगणीय चकास् धातु के वर्तमान लट् के प्रथम पुरुष का बहुवचन।

उदारकीर्तेरुदयं दयावत:
प्रशान्तबाधं दिशतोऽभिरक्षया।
स्वयं प्रदुग्धेऽस्य गुणैरुपस्नुता
वसूपमानस्य वसूनि मेदिनी।। 18।।

अन्वय:—उदारकीर्ते: दयावत: अभिरक्षया प्रशान्तबाधम् उदयम् दिशत: वसूपमानस्य अस्य गुणै: उपस्नुता मेदिनी वसूनि स्वयं प्रदुग्धे।

शब्दार्थ—उदारकीर्ते: = महान् यशस्वी, दयावत: = दयालु, अभिरक्षया = जनरक्षण के द्वारा, प्रशान्तबाधम् = निर्बाध रूप से, उदयम् = उन्नति को, दिशत: = प्राप्त करते हुए, वसूपमानस्य = कुबेर के समान, अस्य = इस दुर्योधन के, गुणै: = गुणों से, उपस्नुता = द्रवित की गई, मेदिनी =पृथ्वी, वसूनि = धनों को, स्वयं प्रदुग्धे = स्वयं दोहन करती है।

अनुवाद—अत्यधिक कीर्ति वाले, दयालु, सब ओर से सुरक्षा व्यवस्था के द्वारा निर्बाध उन्नति करने वाले, कुबेर तुल्य इस कुरु नरेश दुर्योधन के गुणों से द्रवित हुई धरती स्वयं ही धनसमृद्धि प्रदान करती है।

भावार्थ—वनेचर दुर्योधन की कार्यप्रणाली की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि उसने दया, उदारता, प्रजारक्षण, तत्परता आदि प्रशंसनीय गुणों से महान् यश अर्जित किया है। करुण हृदय बना हुआ वह सदा ही दीनों की सहायता करता है तथा ऐसे प्रयास करता है जिससे प्रजा को दैवी तथा मानुषी आपत्तियाँ न हो पावें। निरन्तर प्रजापालन में तत्पर रहने के कारण उसकी प्रजा क्रमश: वृद्धि को प्राप्त हो रही है तथा लोग उसे कुबेर तुल्य मानने लग गए हैं। कुबेर तुल्य राजा के गुणों से द्रवित पृथ्वी स्वयं प्रचुर मात्रा में उसी

प्रकार धन रूप दूध उगलती है, जिस प्रकार नवप्रसूता अभिरक्षिता गौ चतुर व्यक्ति के द्वारा दुहे जाने पर प्रचुर मात्रा में दूध देती है।

संस्कृत-व्याख्या—दुर्योधनस्य गुणैः तदीयराज्यस्य समृद्धिः निरन्तरं दधाति इति सूचयन् किरातः कथयति–

उदारकीर्तेः = कीर्तिमतः, दयावतः = करुणायुक्तस्य, अभिरक्षया = सर्वतो लोकरक्षणेन, प्रशान्तबाधम् = निर्बाधम्, उदयम् = समृद्धिमभ्युदयं च, दिशतः = वसूपमानस्य = कुबेर-तुलस्य, अस्य = सुयोधनस्य, गुणैः = उदारता–दया–प्रजापालनादि गुणैः, उपस्नुता = द्रविता, मेदिनी = पृथ्वी, स्वयम् वसूनि = धनानि, प्रदुग्धे = प्रददाति।

कोष—"वसुर्मयूखानि धनाधिपेषु" इति विश्वः। "वसु तोये धने मणौ" इति वैजयन्ती।

'उदारो दातृमहतोः' इत्यमरः। 'दया कृपा अनुकम्पा स्यात्' इत्यमरः। 'कु पृथ्वी पृथिवी स्थिरा च धरणी विशम्भरा मेदिनी' इति हलायुधः।

अलंकार—अप्रस्तुत गौ के व्यवहार का केवल विशेषणों की समानता के कारण आरोप हो रहा है। अतः समासोक्ति अलंकार है।

टिप्पणी—(1) उदारकीर्तेः = उद् + आ + रा +क स्त्रियाम् टाप् उदारा, कृ + क्तिन् भावे कीर्तिः, उदारा कीर्तिः यस्य सः (बहुब्रीहि), तस्य।

(2) उदयम् = उद् + इ + अच् भावे तम्।

(3) दयावतः = दया + मतुप् + ङस्, दया अस्ति अस्य तस्य।

(4) प्रशान्तबाधम् = प्र + शम् + णिच् + क्त कर्मणि स्त्रियाम्। प्रशान्ता बाधा यस्मिन् सः तम् (बहुब्रीहि)।

(5) अभिरक्षया = अभि + रक्ष् + अ भावे स्त्रियाम् तया अभिरक्षया।

(6) वसूपमानस्य = वसुः उपमानम् अस्य इति वसूपमानः तस्य। बहुब्रीहि समास।

(7) उपस्नुता = उप + स्नु क्त + टाप् कर्मणि स्त्रियाम्।

(8) मेदिनी = मेद + इनि, मत्वर्थे स्त्रियाम्, मेदः अस्ति अस्यामिति।

(9) स्वयं प्रदुग्धे = स्वतः प्रदुग्धा भवति, प्र + दुह् + लट् ते कर्मकर्त्तरि।

महौजसो मानधनाः धनार्चिता
धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्त्तयः।
नसंहतास्तस्य न भिन्नवृत्तयः
प्रियाणि वाञ्छन्त्यसुभिः समीहितुम् ।। 19।।

अन्वयः—महौजसः मानधनाः धनार्चिताः संयति लब्धकीर्त्तयः न संहताः न भिन्नवृत्तयः धनुर्भृतः तस्य असुभिः प्रियाणि समीहितुम् वाञ्छन्ति।

शब्दार्थ—महौजसः = महान्, ओजस्वी, मानधनाः = स्वाभिमानी, धनार्चिताः = पुरस्कार आदि से सम्मानित, संयति = युद्ध में, लब्धकीर्त्तयः = यश प्राप्त करने वाले, न संहताः = स्वार्थ साधन के लिए गुटबंदी नहीं करने वाले, न भिन्नवृत्तयः = परस्पर विरोध न करने वाले, धनुर्भृतः = धनुर्धारी योद्धा लोग, असुभिः = प्राणों से, तस्य = उस दुर्योधन के, प्रियाणि = अभीष्ट कार्यों को, समीहितुम् = करना, वाञ्छन्ति = चाहते हैं।

अनुवाद—महान् ओजस्वी, स्वाभिमानी, पुरस्कारादि से सम्मानित, युद्ध में कीर्ति प्राप्त करने वाले, स्वार्थवश राजा के विरुद्ध कभी गुटबन्दी नहीं करने वाले तथा राजसेवा में बाधक पारस्परिक विरोध से दूर रहने वाले धनुर्धारी योद्धागण अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी उस दुर्योधन के अभीष्ट कार्य को करना चाहते हैं।

भावार्थ—वनेचर कहता है कि दुर्योधन ने अपने व्यवहार से योद्धाओं का हृदय जीत लिया है। दुर्योधन की सेवा में महाबली, युद्ध में प्रतिष्ठा अर्जित करने वाले तथा स्वाभिमानी वीर हैं, जिनको वह अत्यन्त उदारता से पुरस्कारादि वितरण द्वारा सम्मानित करता है। योद्धा लोग भी कार्य सिद्ध करने के लिए न तो कभी दलबन्दी करते हैं और न कभी स्वामी का काम बिगाड़ने को किसी कार्य को करते समय अलग-अलग अपना मन ही रखते हैं। वे अपने स्वामी में इतने अनुरक्त हैं कि उसके लिए प्राण तक न्यौछावर करने को सन्नद्ध है। किरात यह भी इंगित करता है कि जिस राजा के सैनिक योद्धा ऐसे स्वामिभक्त हों, उसे जीतना आसान कार्य नहीं है।

संस्कृत-व्याख्या—महौजसः = महातेजस्विनः, मानधनाः = मनस्विनः, धनार्चिताः = धनैः सम्पद्भिः अर्चिताः सत्कृताः, संयति = युद्धे, लब्धकीर्त्तयः = यशः-सम्पन्नाः, न संहताः = स्वार्थं साधयितुं न परस्परं मिलिताः, न भिन्नवृत्तयः = न भिन्नमतयः, मिथो विरोधरहिताः, धनुर्भृतः = धर्नुधारिणः, तस्य = दुर्योधनस्य, प्रियाणि = प्रियकार्याणि, असुभिः = प्राणैः, समीहितुम् = सम्पादयितुम्, वाञ्छन्ति = इच्छन्ति।

कोष—'ओजो दीप्तावववष्टम्भे प्रकाशबलयोरपि' इति मेदिनी। 'पुंसि भूम्न्यसवः प्राणाः' इत्यमरः। 'मानश्चित्तसम्मुन्नतिः' इति चामर। 'समुदायः स्त्रियः संयत्समित्याजिसमिद्युधः' इत्यमरः।

अलंकार—इस श्लोक में महौजसः, मानधनाः धनार्चिताः, संयति लब्धकीर्त्तयः आदि पद अपने विशेषण बल से प्राणत्याग के संकल्प के कारण हैं, इसलिए काव्यलिङ्ग अलंकार है। उक्त विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर अलंकार है तथा तिलतण्डुलवत् न्याय से इन दोनों के पृथक्-पृथक् दिखाई देने से संसृष्टि अलंकार है।

टिप्पणी—(1) महौजसः = महत् ओजः येषां ते महौजसः। (बहुव्रीहि)

(2) मानधनाः = मान एवं धनं येषां ते (बहुव्रीहि) मन + घञ् भावे मानः।

(3) धनार्चिताः = धनैः अर्चिताः। (तत्पुरुष समास) अर्च + णिच् + क्त कर्मणि।

(4) संयति = सम् + यम् + क्विप् अधिकरणे, संयत् तस्याम्।

(5) लब्धकीर्त्तयः = लब्धा कीर्तिः यैः ते (बहुव्रीहि समास), लभ् + क्त + कर्मणि स्त्रियाम्।

(6) न संहता = सम् + हन् + क्त कर्त्तरि, न संहताः (सुप सुपा समास)।

(7) न भिन्नवृत्तयः = भिन्नवृत्तिर्येषां ते (बहुव्रीहि स) भिन्नवृत्तयः न भिन्नवृत्तयः। (सुप्सुपेति समास)।

(8) धनुर्भृतः = धनु विभ्रतीति, धनुस् + भृ + क्विप् कर्त्तरि धनुर्भृतः।

(9) प्रियाणि = प्रीणन्तीति प्री + क कर्त्तरि प्रियाणि।

(10) समीहितुम् = सम् + इह् + तुमुन्

(11) असुभिः = तृतीया बहुवचन। संस्कृत में प्राण शब्द और उसके पर्यायवाची शब्द सदैव बहुवचन में ही प्रयुक्त होते हैं।

महीभृतां सच्चरितैश्चरैः क्रिया,
स वेद निःशेषमशेषितक्रियः।
महोदयैस्तस्य हितानुबन्धिभिः
प्रतीयते धातुरिवेहितं फलैः।। 20।।

अन्वयः—अशेषितक्रियः सः सच्चरितैः चरैः महीभृताम् क्रियाः निःशेषम् वेद। धातुरिव तस्य ईहितम् महोदयैः हितानुबन्धिभिः फलैः प्रतीयते।

शब्दार्थ—अशेषितक्रियः = सदा अपने कर्त्तव्यों को पूर्ण करने वाला, सः = वह, सच्चरितैः = अच्छे आचरण वाले, चरैः = गुप्तचरों के द्वारा, महीभृताम् = अन्य राजाओं के, क्रियाः = कार्यों को, निःशेषम् = पूर्णरूपेण, वेद = जान लेता है, तस्य = उस दुर्योधन की, धातुरिव = ब्रह्मा के समान, ईहितम् = उद्योग, महोदयैः = महान् प्रगतियों वाले, हितानुबन्धिभिः = हितकारी, फलैः = परिणामों से ही, प्रतीयते = ज्ञात होता है।

अनुवाद—वह दुर्योधन फल प्राप्ति तक समस्त क्रियाएँ करता है तथा सच्चरित्र गुप्तचरों द्वारा राजाओं के कार्यों को पूर्ण रूप से समझ लेता है। उस दुर्योधन की चेष्टा ब्रह्मा की चेष्टा के समान बड़ी उन्नति वाली सिद्धियों से ज्ञात होती है।

भावार्थ—इस श्लोक में दुर्योधन की गुप्तचर सेवा के कौशल का वर्णन करते हुए वनेचर कहता है कि दुर्योधन न केवल अपना राज्य सम्बन्धी कार्य समाप्त करके ही अपने

आपको कृतकृत्य मानता है, अपितु दूसरे राजाओं तथा उनके कार्यों की गतिविधियों को जानने के लिए भी अपने विश्वासपात्र गुप्तचरों को यथासमय उचित स्थान पर भेजता है तथा उनके माध्यम से सम्पूर्ण जानकारी रखता है। यह उसके प्रशासन-चातुर्य का ही परिचायक है। क्योंकि शत्रु की गतिविधियों का पूर्व ज्ञान किसी भी शासक को सतर्क, सुरक्षित या विजेता बनाने में सहायक होता है। दुर्योधन की दूसरी विशेषता यह है कि वह अपनी नीतियों व योजनाओं को पूर्णतया गुप्त रखता है। लोगों को उसके कार्यों का ज्ञान अनुकूल परिणाम सामने आने के पश्चात् ही होता है।

संस्कृत-व्याख्या—अस्मिन् श्लोके दुर्योधनस्य गुप्तचरसेवायाः दक्षतां वर्णयन् किरातः आह—

अशेषितक्रियः = सम्पादितसम्पूर्णकार्यः, सः = दुर्योधनः, सच्चरितैः = कर्त्तव्यनिष्ठैः, चरैः = गुप्तचरैः, महीभृताम् = नृपाणाम्, क्रियाः = कार्याणि, निःशेषम् = पूर्णतया, वेद = जानाति। धातुः इव = विधातुः इव, तस्य = दुर्योधनस्य, ईहितम् = चेष्टितम्, महोदयैः = अभ्युदययुक्तैः, हितानुबन्धिभिः = हितकारिभिः फलैः = परिणामैः, प्रतीयते = ज्ञायते।

कोष—'धाताब्जयोनिर्द्रुहिणो विरिञ्च कमलासनः। स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा' इत्यमरः। 'यथार्हवर्ण प्रणिधिरपसर्पश्चरः स्पशः' इति चामरः। 'फलं हेतुकृते जातीफले फलक-सस्ययोः, त्रिफलायां च कक्कोले शस्याग्रे व्युष्टिलाभयोः' इति मेदिनी।

अलंकार—'धातुरिवेहितं फलैः' कथन से सादृश्य-साधर्म्य वर्णन हुआ है, अतः उपमा अलंकार है-"साधर्म्यमुपमा भेदे।"

टिप्पणी—(1) अशेषितक्रियः = अशेषिताः क्रियाः येन सः। बहुब्रीहि समास।

(2) सच्चरितैः =चर् + क्त भावे नपुसंके चरितम्, अस् + शतृ + सत्, सत् चरितं येषां ते तैः। बहुब्रीहि समास।

(3) चरैः = चरन्तीति चराः तै। (चर+अच्), करणे तृतीया।

(4) महीभृताम् = महीं बिभ्रति इति महीभूतः तेषाम्। उपपद तत्पुरुष। मही + भृ + क्विप् कर्त्तरि।

(5) निःशेष = शिप् + घञ् भावे शेषः, निर्गतः शेषो यस्मात् तत् यथा तथा। बहुब्रीहि।

(6) ईहितम् = ईह् चेष्टायां + क्त प्रत्यय नपुंसके भावे।

(7) महोदयैः = महान् उदयः येभ्यः तैः (बहुब्रीहि समास) उद् + इ + अच् = उदय।

(8) हितानुबन्धिभिः = हितम् अनुबध्नाति यानि, तानि हितानुबन्धीनि तैः हितानुबन्धिभिः। (उपपद समास) 'हितम्' में धा + क्त अनुबन्धः = अनु + बन्ध् + घञ् भावे।

Mons 2014 Dec.

न तेन सज्यं क्वचिदुद्यतं धनुः
कृतं न वा कोपविजिह्ममाननम्।
गुणानुरागेण शिरोभिरुह्यते,
नराधिपैर्माल्यविमवास्य शासनम्।। 21।।

अन्वयः—तेन क्वचित् सज्यम् धनुः न उद्यतम् वा कोपविजिह्ममाननम् न कृतम्, गुणानुरागेण नराधिपैः अस्य शासनम् माल्यमिव शिरोभिः उह्यते।

शब्दार्थ—तेन = उस दुर्योधन के द्वारा, क्वचित् = कहीं भी, सज्यम् = प्रत्यंचा युक्त, धनुः = धनुष, न उद्यतम् = नहीं उठाया गया, आननं वा = अथवा मुख भी, कोपविजिह्मम् = क्रोध से वक्र, न कृतम् = नहीं किया गया, गुणानुरागेण = गुणों के प्रति प्रेम के कारण, नराधिपैः = अधीनस्थ राजाओं के द्वारा, अस्य = इसके, शासनम् = आदेश को, माल्यम् इव = माला के तुल्य, शिरोभिः = मस्तकों से, उह्यते = धारण किया जाता है।

अनुवाद—उस दुर्योधन के कहीं भी प्रत्यंचायुक्त धनुष नहीं उठाया और न कहीं अपना मुख क्रोध से वक्र किया। राजा लोग भी उसके गुणों के अनुराग से उसकी आज्ञा माला के समान शिरोधार्य करते हैं।

भावार्थ—दुर्योधन का अपने अधीनस्थ राजाओं के प्रति मित्रतापूर्ण व्यवहार है। दुर्योधन के शील तथा सौजन्य आदि गुणों से सभी राजा लोग इतना प्रेम करते हैं कि उसके मित्र बने हुए वे उसके आदेश को उसी प्रकार शिरोधार्य करते हैं जिस प्रकार माला को धारण किया जाता है। इसलिए कभी ऐसा अवसर ही उपस्थित नहीं हुआ कि उसे किसी को दण्ड देने के लिए धनुष उठाना पड़ा हो या आदेश का उल्लंघन करने पर मुख टेढ़ा करना पड़ा हो।

संस्कृत-व्याख्या—अस्मिन् श्लोके दुर्योधनस्य गुणैः प्रभावितानां नृपाणां मैत्रीपूर्ण-व्यवहारं वर्णयन् वनेचरः आह—

तेन = दुर्योधनेन, क्वचित् = कुत्रापि, सज्यम् = मौर्वीसहितम्, धनुः = चापम्, न उद्यतम् = न प्रयुक्तम्, वा = कोपविजिह्मम् = क्रोधेन कुटिलम्, आननम् = मुखम्, न = नहि, विहितम् = कृतम्, गुणानुरागेण = गुणप्रेम्णा, अस्य = दुर्योधनस्य शासनम् = आदेशः, नराधिपैः = नृपतिभिः, माल्यमिव = पुष्पमाला इव, शिरोभिः = मस्तकै, उह्यते = धार्यते।

कोष—'मौर्वी ज्या शिञ्जनी गुणः' इत्यमरः। 'अरालं वृजिनं जिह्मम्' इत्यमरः। 'मनुजाः मानवाः नराः।' उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षं मूर्धानो मस्तकोऽस्त्रियाम् इति चामरः

अलंकार—'गुणानुरागेण' पद से दयादानदाक्षिण्यादि गुणों का आकर्षण है तो माला भी गुण (सूत्र) से ग्रथित होती है। इस तरह उपमान, उपमेय एवं वाचकादि के समावेश से उपमा अलंकार है।

टिप्पणी—(1) सज्यम् = ज्यया सह + इति सज्यम्, बहुब्रीहि समास।

(2) कोपविजिह्मम् = कोपेन विजिह्मम् (तृ. तत्पु.)। कुप + घञ् भावे।

(3) उद्यतम् = उत् + यम् + क्त।

(4) गुणानुरागेण = गुणेषु अनुरागः गुणानुरागः, तेन। तत्पु. समास।

(5) नराधिपैः = नराणाम् अधिपाः नराधिपाः, तैः। तत्पु. समास।

(6) शासनम् = शिष्यते इति शासनम्। शास् + ल्युट्।

(7) माल्यम् = माला एव माल्यम्। माला + ष्यञ्।

स यौवराज्ये नवयौवनोद्धतं,
निधाय दुःशासनमिद्धशासनः।
मखेष्वखिन्नोऽनुमतः पुरोधसा,
धिनोति हव्येन हिरण्यरेतसम्।। 22।।

अन्वयः—इद्धशासनः सः यौवराज्ये नवयौवनौद्धतम् दुःशासनम् निधाय, मखेषु अखिन्नः पुरोधसा अनुमतः (सन्) हव्येन हिरण्यरेतसम् धिनोति।

शब्दार्थ—इद्धशासनः = अप्रतिहत शासन वाला, सः = वह दुर्योधन, यौवराज्ये = युवराज पद पर, नवयौवनौद्धतम् = नवयौवन के कारण उद्दण्ड, दुःशासनम् = दुःशासन को, निधाय = प्रतिष्ठित करके, मखेषु = यज्ञों में, अखिन्नः = प्रमाद शून्य होकर, पुरोधसा = पुरोहित के द्वारा, अनुमतः = उपदिष्ट, हव्येन = हव्य से, हिरण्यरेतसम् = अग्नि को धिनोति = प्रसन्न करता है।

अनुवाद—अप्रतिहत शासन वाला प्रभावशाली वह दुर्योधन नवयौवन के कारण उद्दण्ड दुःशासन को युवराज के कार्य में नियुक्त कर पुरोहित की आज्ञा से अश्रान्त रहता हुआ यज्ञों में हवि के द्वारा अग्नि को प्रसन्न करता है।

भावार्थ—वनेचर कहता है कि दुर्योधन राज्यकर्म और देवकर्म दोनों ही को यथाविधि करके ऐहिक एवं पारलौकिक सुख-साधनों को प्राप्त करने की चेष्टा करता है। उसने समस्त राज्य कार्य सम्पन्न करके उसकी देखभाल के लिए अपने युवा भ्राता दुःशासन को युवराज पद पर आसीन किया है जो उसके भातृप्रेम तथा युवाशक्ति के उचित उपयोग की प्रवृत्ति को सूचित करता है।

दुर्योधन न केवल प्रजा का ही अनुरंजन करता है, अपितु पुरोहित द्वारा प्रतिपादित विधि के अनुसार यज्ञों का आयोजन करके देवताओं को भी प्रसन्न करता है, जो उसकी धार्मिक प्रवृत्ति का परिचायक है। अतः प्रजा भी धर्मानुरागी शासक को आदर की दृष्टि से देखती है। फलस्वरूप सामन्त राजा ही नहीं देवता भी उसके सहायक हैं।

संस्कृत-व्याख्या—दुर्योधनस्य यज्ञादिधर्मकृत्येषु प्रवृत्तिं सूचयन् किरातः आह—

इद्धशासनः = अव्याहतादेश, सः = सुयोधनः, यौवराज्ये = युवराजपदे, नवयौवनौद्धतम् = नवयौवनेन, नवयौवनावस्थया, उद्धतं = प्रगल्भम्, दुःशासनम् = स्वीयमनुजम्, निधाय = प्रतिष्ठाय, मखेषु = यज्ञेषु, अखिन्नः = अश्रान्तः सन्, पुरोधसा = पुरोहितेन, अनुमतः सन् = अनुज्ञातः, हव्येन = हव्यपदार्थेन, हिरण्यरेतसम् = यज्ञाग्निम्, धिनोति = प्रीणयति तर्पयति वा।

कोष—'नव्यं नवं नवीनं स्यान्नूतनमभिनवं नुवम्' इति हलायुधः। 'यागो यज्ञः क्रतुः स्तोमः सप्ततन्तुर्मखोऽध्वरः' इत्यमरः। हिरण्यरेता हुतभुग् दहनो हव्यवाहनः इति चामरः। 'सौवस्तिक इति प्रोक्तः पुरोधाश्च पुरोहितः' इति हलायुधः।

अलंकार—अनेक वर्णों की एक बार साम्यावृत्ति होने से छेकानुप्रास अलंकार है।

टिप्पणी—(1) इद्धशासनः = इद्धं शासनं यस्य सः, बहुब्रीहि समास। इन्ध् + क्त = इद्ध। शासन = शास् + ल्युट भावे शासनम्।

(2) नवयौवनौद्धतम् = नवं यौवनं नवयौवनं तेन उद्धतः इति नवयौवनोद्धतः, तम्। तत्पुरुष समास। यौवन-युवन् + अण्। उद्धत-उत् + हन् + कर्त्तरि क्त।

(3) यौवराज्ये = युवा चासौ राजा चेति युवराजः। (कर्मधारय स.) युवराजस्य भावः यौवराज्यं तस्मिन् यौवराज्ये। यौवराज्य = युवराज +ष्यञ्।

(4) पुरोधसा = पुरः धत्ते वा धीयते इति, पुरस् + धा + असुन् कर्त्तरि कर्मणि वा, पुरोधाः तेन।

(5) अखिन्नः = न खिन्न इति, नञ् तत्पुरुष।

(6) अनुमतः = अनु + मन् + क्त कर्मणि।

(7) हव्येन = हूयते यत् तत् हव्यम्, तेन हव्येन। हु + यत्।

(8) हिरण्यरेतसम् = हिरण्यं रेतो यस्य स तम्। बहुब्रीहि।

प्रलीनभूपालमपि स्थिरायति,
प्रशासदावारिधि मण्डलं भुवः।
स चिन्तयत्येव भियस्त्वदेष्यती-
रहो दुरन्ता बलद्विरोधिता।।23।।

अन्वयः—सः प्रलीनभूपालम् स्थिरायति आवारिधि भुवः मण्डलम् प्रशासत् अपि त्वदेष्यतीः भियः चिन्तयति एव। अहो बलवद्विरोधिता दुरन्ता (भवति)।

शब्दार्थ—सः = वह दुर्योधन, प्रलीनभूपालम् = शत्रु राजाओं से रहित, स्थिरायति = चिरस्थायी, आवारिधि = समुद्र पर्यन्त, भुवः = पृथ्वी के, मण्डलम् = राज्य का, प्रशासत् = प्रशासन करता हुआ, अपि = भी, त्वदेष्यतीः = आपकी ओर से आने वाली, भियः = विपत्तियों को, चिन्तयति एव = चिन्ता करता रहता है, अहो = हन्त, बलवद्, विरोधिता = बलवान् के साथ विरोध, दुरन्ता = बुरे अन्त वाला होता है।

अनुवाद—वह दुर्योधन शत्रु राजाओं के लुप्त हो जाने पर चिरस्थायी पृथ्वी मण्डल पर समुद्र पर्यन्त शासन करता हुआ भी आपकी ओर से भविष्य में आने वाले भय के बारे में चिन्ता करता है। अहो, बलवान से विरोध बुरे अन्त वाला होता है।

भावार्थ—दुर्योधन के कुशल प्रशासन का वर्णन करने के उपरान्त वनेचर युधिष्ठिर से कहता है कि दुर्योधन की सफलता को जानकर आपको निरुत्साह नहीं होना चाहिए, क्योंकि भले ही वह समुद्र-पर्यन्त भू-मण्डल पर शासन कर रहा है, शत्रुओं से रहित है, फिर भी जब उसे आपके विरोध का स्मरण हो आता है तब वह अत्यन्त चिन्ताग्रस्त हो जाता है। वास्तव में बलवान् के साथ शत्रुता करने का परिणाम बुरा ही होता है। आशय यह है कि दुर्योधन भले ही सार्वभौम राजा है, तथापि बलशाली पाण्डवों के साथ वैर रखने से उसका कभी भी और कोई भी अनर्थ घट सकता है। इस कारण वह चिन्ताग्रस्त रहता ही है। इस कथन से किरात ने दुर्योधन की आन्तरिक दुर्बलता का चित्रण कर युधिठिर के शौर्य और भावी विजय की व्यंजना की है।

संस्कृत-व्याख्या—अस्मिन् श्लोके किरातः दुर्योधनस्य भयक्रान्ततां वर्णयन् आह—

सः = दुर्योधनः, प्रलीनभूपालमपि = शत्रुविहीनमपि, स्थिरायति = चिरस्थायी, आवारिधि = समुद्रपर्यन्तम्, भुवः = भूम्याः, मण्डलम् = राज्यम्, प्रशासत् अपि = अधिकुर्वन् अपि, त्वत् = भवतः, युधिष्ठिरात्, एष्यतीः = आगमिष्यतीः, उत्पत्स्यमानाः वा भियः = भयहेतून्, चिन्तयति एव = सदैव चिन्तयति, अहो = आश्चर्यमेतत्, बलवद्विरोधिता =बलिना सह विरोधः, दुरन्ता = दुष्टावसाना भवति।

कोष—'स्यान्मण्डलं द्वादशराजके च देशे च बिम्बे च कदम्बके च। कुष्ठप्रभेदेऽप्युपसूर्यकेऽपि भुजंगभेदे शुनि मण्डलः स्यात्।।' इति विश्वः। 'दरत्रासौ भीतिर्भीः साध्वसं भयम्' इत्यमरः। 'भूर्भूमिरचलानन्ता रसा विश्वम्भरा स्थिरा' इति चामरः।

अलंकार—इसमें सामान्य कथन से विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

टिप्पणी—(1) प्रलीनभूपालम् = प्रलीनाः भूपालाः यस्मिन् तत्। बहुब्रीहि समास।

(2) स्थिरायति = स्थिरा आयतिः यस्य तत्। बहुब्रीहि समास।

(3) आवारिधि = आ वारिधिभ्यः। अव्ययीभाव समास।

(4) प्रशासत् = प्र + शास् + शतृ प्रत्यय।

(5) त्वदेष्यतीः = त्वत् एष्यतीः (आ + इ + लृट् + शतृ ङीप्)

(6) दुरन्ता = दुर् अन्तः यस्याः सा दुरन्ता (बहुब्रीहि)।

कथाप्रसङ्गेन जनैरुदाहृता-
दनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः।
तवाभिधानाद् व्यथते नताननः
सुदुःसहान्मन्त्रपदादिवोरगः ।।24।।

अन्वयः—कथाप्रसङ्गेन जनैः उदाहृतात् तव अभिधानात् अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः सुदुःसहात् मन्त्रपदात् उरग इव नताननः व्यथते।

शब्दार्थ—कथाप्रसङ्गेन = चर्चा के प्रसङ्ग में, जनैः = लोगों के द्वारा, उदाहृतात् = उच्चारित, तव = आपके, अभिधानात् = नाम से, अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः = अर्जुन के पराक्रम का स्मरण करके, सः = वह दुर्योधन, सुदुःसहात् = असह्य, मन्त्रपदात् = मंत्र से, उरग इव = सर्प के समान, नताननः = सिर झुकाकर, व्यथते = दुःखी हो जाता है।

सर्प के पक्ष में—कथाप्रसङ्गेन = चर्चा के प्रसङ्ग में, जनैः = विष वैद्य के द्वारा, उदाहृतात् = उच्चारित, तव अभिधानात् = ताक्ष्र्य और वासुकि के नामोच्चारण से युक्त, अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः = गरुड नामक पक्षी के पैरों के प्रहार को याद करने वाले, नताननः = फन नीचा किए हुए, उरगः इव = सर्प जैसा, व्यथते = व्यथित होता है।

अनुवाद——वार्तालाप में प्रसंगवश आप लोगों के सम्बन्ध में चर्चा चलने पर अर्जुन के पराक्रम का स्मरण करके जैसे श्रेष्ठ विष वैद्यों द्वारा उच्चारण किए गए गरुड़ और वासुकि के नामों से युक्त अत्यन्त दुःसह मन्त्र से गरुड़ के पादविक्षेप का स्मरण कर नीचा मुख किये सर्प व्यथित होता है, वैसे ही नीचा मुख किए हुए (दुर्योधन) दुःखित होता है।

भावार्थ—वनेचर युधिष्ठिर से कहता है कि महाराज, आपके नाम के श्रवणमात्र से तथा अर्जुन के पराक्रम की याद कर दुर्योधन उसी प्रकार व्यथित हो उठता है, जैसे श्रेष्ठ विष वैद्यों द्वारा उच्चारण किए गए गरुड और वासुकि के नामों से युक्त अत्यन्त दुःसह मन्त्र से गरुड के पादविक्षेप का स्मरण कर सर्प अधोमुख होकर दुःखी होता है। मन्त्रबल से सर्पों के नियंत्रण तथा विष निवारण की लोक प्रसिद्धि है। इसी लोक-मान्यता के

आधार पर भयभीत दुर्योधन की मन्त्रभीत सर्प से तुलना की गई है। किरात यह बताना चाहता है कि पाण्डवों का नाम सुनकर काँपने वाला दुर्योधन युद्ध होने पर अवश्य पराजित होगा।

संस्कृत-व्याख्या—प्रस्तुत श्लोके किरातः श्लेषालङ्कारेण दुर्योधनस्य भयग्रस्ततां वर्णयति—

दुर्योधनपक्षे—कथाप्रसङ्गेन = कथाक्रमेण, जनैः = लोकै, उदाहृतात् = उच्चारितात्, तव = युधिष्ठिरस्य, अभिधानात् = नामधेयात्, अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः = स्मृतार्जुनपराक्रमः, सुदुःसहात् = अतिदुःसहात्, मन्त्रपदात् = मन्त्रशब्दात्, उरग इव = सर्प इव, नताननः = अधोमुखः सन्, व्यथते =पीडां प्राप्नोति।

सर्पपक्षे—कथाप्रसङ्गेन जनैः = विषवैद्यप्रमुखजनैः, उदाहृतात् = उच्चारितात्, तवाभिधानात् = तार्क्ष्यवासुकिनामधेयात्, अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः = अनुस्मृतः स्मृतः आखण्डलसूनोः विष्णोः विः पक्षिणः गरुडस्येत्थक्रमः पादविक्षेपः येन सः, स्मृतगरुडवेगः, सुदुःसहात् = अतिदुःसहात्, मन्त्रपदात्, मन्त्रशब्दात्, उरग इव = सर्प इव, नताननः = अधोमुखः सन्, व्यथते =पीडितो भवित।

कोष—'कथाप्रसंगो वार्ताया विषवैद्येऽपि' इति विश्वः। 'सुनः पुत्रेऽनुजे रतौ' इति विश्वः। 'आख्याह्वे अभिधानं च नामधेयं च नाम च' इत्यमरः। 'पीडा बाधा व्यथा दुःखम्' इति चामर। 'आखण्डलः सहस्राक्ष ऋभुक्षाः' इत्याद्यमरः। 'उरगः पन्नगो भोगी जिह्मगः पवनाशनः' इत्यमरः।

अलंकार—इस श्लोक में श्लेषानुप्राणित पूर्णोपमा अंलकार है। 'सः' (उपमेय) 'उरग' (उपमान), 'इव' (वाचक शब्द) 'इन्द्रसुनू' के पराक्रम का स्मरण तथा 'नतानन होना' आदि साधारण धर्म होने से पूर्णोपमा है। इस श्लोक के दो अर्थ निकलते हैं। अतः श्लेष अलंकार भी है।

टिप्पणी—(1) कथाप्रसङ्गेन = कथायाः प्रसंगः इति कथाप्रसंगः तेन। तत्पु. स.।

(2) तवाभिधानात् = तश्च वश्च तवौ तार्क्ष्य वासुकी, तयोः अभिधानम् तस्मात्, तत्पुरुष समास।

(3) अनुस्मृताखण्डलसूनुविक्रमः = अनुस्मृतः आखण्डलसूनोः विक्रमः येन सः, बहुब्रीहि समास। सर्पपक्षे—अनुस्मृतः आखण्डलसूनोः विक्रमः येन सः।

(4) नताननः = नतम् आननम् यस्य सः, बहुब्रीहि समास।

(5) सुदुःसहात् = दुःखेन सह्यते इति दुर्+सह्+खल् कर्मणि दुःसहम् सु सुष्ठु अत्यधिकम् दुःसहसम् तस्मात् सुदुःसहात्।

(6) मन्त्रपदात् = मन्त्रस्य पदं तस्मात्, हेतौ पंचमी।

(7) उरगः = उरसा गच्छीतीति उरगः, उरस्+गम्+ड कर्त्तरि।

तदाशु कर्त्तुं त्वयि जिह्ममुद्यते,
विधीयतां तत्र विधेयमुत्तरम्।
परप्रणीतानि वचांसि चिन्वतां,
प्रवृत्तिसाराः खलु मादृशां गिरः ।। 25 ।।

अन्वयः—तत् त्वयि जिह्मं कुर्तुम् उद्यते तत्र विधेयम् उत्तरम् आशु विधीयताम्। परप्रणीतानि वचांसि चिन्वताम् मादृशाम् गिरः प्रवृत्तिसाराः खलु।

शब्दार्थ—तत् = इसलिए, त्वयि = तुम्हारे प्रति, जिह्मम् = कुटिलता, कुर्तुम् = करने के लिए, उद्यते = उद्यत हुए, तत्र = उस दुर्योधन के विषय में, विधेयम् = करने योग्य, उत्तरम् = प्रतीकार, आशु = शीघ्र, विधीयताम् = कीजिए, परप्रणीतानि = दूसरों के द्वारा कहे गये, वचांसि = वचनों को, चिन्वताम् = एकत्र करने वाले, मादृशाम् = मुझ जैसे के, गिरः : वाणी, प्रवृत्तिसाराः = मात्र बताने वाली, खलु = निश्चय से।

अनुवाद—अतः आपके प्रति कुटिलता करने के लिए उद्यत उस दुर्योधन के प्रति करने योग्य प्रतीकार शीघ्र कीजिए। दूसरों के कहे हुए वचनों का संग्रह करने वाले हम जैसों की वाणी तो केवल वृतान्त की सूचक होती है।

भावार्थ—दुर्योधन के जन–कल्याणकारी कार्यों, राजनीतिक प्रयासों तथा भयाक्रान्त मनःस्थिति का वर्णन करके अपने वक्तव्य का उपसंहार करते हुए वनेचर युधिष्ठिर से कहता है कि आपको इस अवसर पर क्या करना चाहिए, इस विषय में मैं आपको कुछ नहीं कह सकता। मेरा कर्त्तव्य था आपको वास्तविक परिस्थिति से अवगत कराना, क्योंकि हम लोग तो मात्र समाचार वाहक हैं, समयानुकूल कर्त्तव्य निर्धारित करने में आप ही समर्थ हैं।

संस्कृत-व्याख्या—अस्मिन् श्लोके स्वप्रतिवेदनस्य उपसंहारं कुर्वन् वेनचरः युधिष्ठिरं कथयति—

तत् = अतः, त्वयि = भवति, जिह्मं = कपटम्, कर्तुम् = विधातुम्, उद्यते = तत्परे, तत्र = तस्मिन् दुर्योधने, विधेयम् = कर्त्तव्यम्, उत्तरम् = प्रतीकारः, आशु = शीघ्रम्, विधीयताम् = कुरु, परप्रणीतानि = अन्यैः कथितानि, वचांसि = वचनानि, चिन्वताम् = गवेषयताम्, मादृशाम् = मत्सदृशगुप्तचराणाम्, गिरः = वचनानि, प्रवृत्तिसाराः = खलु वार्ताबोधका एव सन्ति।

अर्थात् वार्तामाचवादिनो वयं न तु कर्त्तव्यार्थोपदेशसमर्थाः। अतस्त्वयैव निर्धार्य कार्यमिति भावः।

कोष—'वार्ता प्रवृतितः वृतान्तः' इत्यमरः। 'सत्वरं चपलं तूर्णमविलम्बितमाशु च' इत्यमरः। 'प्रणीतमुपसम्पन्ने वृत्ते क्षिप्ते प्रवेशिते संस्कृताग्नौ' इति हैमः। 'गीर्वाक् वाणी सरस्वती' इत्यमरः।

अलंकार—श्लोक में सामान्य से विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है-सामान्येन विशेषसमर्थननाद् अर्थान्तरन्यासः।

टिप्पणी—(1) विधेयम् = विधातुं योग्यम्-विधेयम्। वि+धा+यत् कर्मणि।

(2) विधीयताम् = वि+धा+लोट्, ताम् कर्मणि।

(3) परप्रणीतानि = प्र+नी+क्त कर्मणि = प्रणीत। परैः प्रणीतानि (तृ. तत्पु.)।

(4) मादृशाम् = मामिव आत्मानं पश्यन्ति इति मादृशाः। अस्मद् +दृश्+क्विन् कर्म कर्त्तरि। यहाँ प्रकृति मादृश है।

(5) प्रवृत्तिसाराः = प्र+वृत्+क्तिन् भावे प्रवृत्तिः। सृ + घञ् भावे सारः। प्रवृत्तिः सारो यासाम् ताः। बहुब्रीहिः। सारम्-सृ+घञ्+अण्।

(6) चिन्वताम् = चि + शतृ (षष्ठी बहुवचन) तेषाम्।

(7) गिरः = गीर्यते इति गिर् (गृ+क्विप् कर्मणि)।

(8) यह श्लोक वनेचर के विनम्र वक्तव्य का उपसंहार है। वनेचर स्वयं को सामान्य व्यक्ति मानते हुए स्वामिभक्ति प्रकट करता है तथा प्रतीकारार्थ उद्यत होने की प्रेरणा भी देता है।

इतीरयित्वा गिरमात्तसत्क्रिये,
गतेऽथ पत्यौ वनसन्निवासिनाम्।
प्रविश्य कृष्णासदनं महीभुजा,
तदाचचक्षेऽनुजसन्निधौ वचः ।। 26 ।।

अन्वयः—वनसन्निवासिनाम् पत्यौ इति गिरम् ईरयित्वा आत्तसत्क्रिये गते (सति) अथ महीभुजा कृष्णासदनम् प्रविश्य अनुजसन्निधौ तत् वचः आचचक्षे।

शब्दार्थ—वनसन्निवासिनाम् = वनवासियों के, पत्यौ = स्वामी के, इति = इस प्रकार, गिरम् = वाणी को, ईरयित्वा = कहकर, आत्तसत्क्रिये = उचित सत्कार पाकर, गते = चले जाने पर, अथ = अनन्तर, महीभुजा = राजा युधिष्ठिर द्वारा, कृष्णासदनम् = द्रौपदी के आवास में, प्रविश्य = प्रवेश करके, अनुजसन्निधौ = छोटे भाइयों के समीप, तत् = वह, वचः = वचन, आचचक्षे = कहा।

अनुवाद—वनवासियों के स्वामी वनेचर के इस प्रकार वचन कहकर पारितोषिक ग्रहण कर चले जाने पर महाराज युधिष्ठिर ने द्रौपद्री के भवन में प्रवेश करके अर्जुनादि छोटे भाइयों के समक्ष उस (वनेचर की) बात को कहा।

भावार्थ—पूर्वोक्त प्रकार से दुर्योधन का वृतान्त कहकर एवं युधिष्ठिर से पुरस्कार प्राप्त कर वह वनेचर वहाँ से चला गया। युधिष्ठिर ने कुशल राजनीतिज्ञ की भाँति शत्रु पर आक्रमण करने से पूर्व गुप्तचर द्वारा शत्रु की गतिविधियों का पता लगाया। गुप्तचर का प्रतिवेदन उसने एकान्त में सुना। उस प्रतिवेदन पर विचार करने हेतु एवं भावी युद्ध-नीति को बनाने हेतु अपने भाइयों की मंत्रणा लेना आवश्यक समझा। इस निमित्त द्रौपदी के भवन में प्रवेश कर वहाँ पर अपने भाइयों के समक्ष वनेचर के द्वारा लाये गये गुप्त समाचार सुनाये। इससे पर्याप्त मन्त्रणा के बाद ही निर्णय लेना युधिष्ठिर की बुद्धिमत्ता एवं नीतिज्ञता का संकेतक है।

संस्कृत-व्याख्या—वनसन्निवासिनाम् = वनवासिनाम्, पत्यौ = स्वामिनि, इति = एवं भूताम्, गिरम् = वाणीम्, ईरयित्वा = कथयित्वा, आत्तसत्क्रिये = प्राप्तपुरस्कारे, गते सति = प्रस्थिते सति, अथ = तदनन्तरम्, महीभुजा = नृपेण युधिष्ठिरेण, कृष्णासदनम् = द्रौपदी-कक्षम्, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, अनुजसन्निधौ = भ्रातृ भातृणां समक्षम्, तत् = वनेचरेण उक्तम्, वचः = वचनम्, आचचक्षे = उवाच।

कोष—'गृहं गेहोदवसितं वेश्म सद्म निकेतनम्। निशान्तवस्त्यसदनं भवनागारमन्दिरम्'।। इत्यमरः। 'धवः पति प्रियो भर्त्ता' इत्यमरः। 'जघन्यजे स्युः कनिष्ठयवीयोऽवरजानुजाः' इति चामरः।

अलंकार—वर्णावृत्ति से अनुप्रास अलंकार है।

टिप्पणी—(1) वनसन्निवासिनाम् = वने सन्निवसन्ति इति वनसन्निवासिनः, तेषां वनसन्निवासिनाम् (उपपद समास) वन + सम् + नि + वस् + णिनि कर्त्तरि = वनसन्निवासिनः।

(2) ईरयित्वा = ईर् + णिच् (चुरादि) क्त्वा।

(3) आत्तसत्क्रिये = आङ् + दा + क्त कर्मणि, स्त्रियाम् = आत्ता। सत् + कृ + श भावे सत्क्रिया, आत्ता सत्क्रिया येन सः (बहुव्रीहि), तस्मिन्।

(4) कृष्णासदनम् = कृष्णायाः सदनं कृष्णासदनम् (षष्ठी तत्पुरुष) सीदन्ति अस्मिन्निति सदनम् = सद् + युच्।

(5) अनुजसन्निधौ = अनु+जन्+ड = अनुजः, तेषां सन्निघो-सम + नि + धा + किः = सन्निधिः, तस्मिन् अनुजसन्निधौ।

(6) महीभुजा = महीं भुनक्तीति महीभुक्, तेन महीभुजा।

(7) आचचक्षे = आ + ख्या (चक्षिङ्)+ लिट्।

विशेष—(i) किरातार्जुनीय महाकाव्य के प्रथम सर्ग में यहाँ तक वनेचर का कथन कथानक का पूर्वपक्ष है। वनेचर युधिष्ठिर द्वारा नियुक्त गुप्तचर था, उसे उचित पारितोषिक

देकर विदा किया गया। कहा भी गया है—'तुष्टिदानमेव चाराणां हि वेतनम्। ते हि तल्लोभात् स्वामिकार्येष्वतीव त्वरयन्ते' इति नीतिवाक्यामृतम्।

(ii) कृष्णा द्रौपदी का नाम है। महाभारत में कहा गया है कि ''कृष्णेत्येवाब्रुवन् कृष्णा कृष्णाभूत् स हि वर्णतः। तथा तन्मिथुनं जज्ञे द्रुपदस्य महामखे।'' अर्थात् कृष्ण वर्ण होने से द्रौपदी को कृष्णा कहा गया और राजा द्रुपद के यज्ञ से उत्पन्न होने के कारण द्रौपदी को याज्ञसेनी भी कहा जाता है।

निशम्य सिद्धिं द्विषतामपाकृती—
स्ततस्ततस्त्याः विनियन्तुमक्षमा।
नृपस्य मन्युव्यवसायदीपनी—
रुदाजहारद्रुपदात्मजा गिरः ।।27।।

अन्वयः—ततः द्रुपदात्मजा द्विषताम् सिद्धिम् निशम्य ततस्त्याः अपाकृतीः विनियन्तुमक्षमा (सती) नृपस्य मनुव्यवसायदीपनीः गिरः उदाजहार।

शब्दार्थ—ततः = तदनन्तर, द्रुपदात्मजा = द्रौपदी ने, द्विषताम् = शत्रुओं की, सिद्धिम् = सफलता को, निशम्य = सुनकर, ततस्त्याः = उससे आने वाली, अपाकृतीः = विकृतियों को, विनियन्तुम् = रोकने में, अक्षमा = असमर्थ हुई, नृपस्य = राजा युधिष्ठिर के, मनुव्यवसायदीपनीः = क्रोध और उद्योग को उत्प्रेरित करने वाली, गिरः = वाणी, उदाजहार = कही।

अनुवाद—द्रुपद पुत्री द्रौपदी युधिष्ठिर द्वारा शत्रुओं की सफलता की बात सुनकर शत्रुओं के द्वारा किए गए अपकृत्यों के स्मरण से उत्पन्न क्रोध को रोकने में असमर्थ हुई, राजा युधिष्ठिर के क्रोध एवं उद्योग को उद्दीप्त करने वाली वाणी बोली।

भावार्थ—इस श्लोक में द्रौपदी के हृदय की क्षुब्धस्थिति की ओर संकेत किया गया है। जब युधिष्ठिर ने वनेचर द्वारा कही गई शत्रुओं की सिद्धि के समाचार सुनाए, तो द्रौपदी दुर्योधन की राजनीति की सफलता के समाचारों को सुनकर अत्यन्त दुःखी हुई। द्रौपदी की अन्तर्व्यथा और क्रोध उसकी उत्तेजक वाणी में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हो उठे। अपने हृदय की प्रतिशोधाग्नि से प्रेरित होकर वह राजा युधिष्ठिर के हृदय में भी शत्रु के प्रति क्रोध एवं युद्ध सम्बन्धी उद्योग को बढ़ाने वाली तीव्र वाणी कहने लगी।

संस्कृत-व्याख्या—ततः = तदनन्तरम्, द्रुपदात्मजा = द्रुपदस्य पुत्री द्रौपदीत्यर्थः, द्विषताम् = शत्रूणाम्, सिद्धिम् = समृद्धिम्, निशम्य = श्रुत्वा, ततः = तत्पश्चात्, ततस्त्याः = शत्रुभ्यः आगताः, अपाकृतीः = विकृतीः, विनियन्तुम् = रोद्धुम्, अक्षमा = असमर्था सती, नृपस्य : = राज्ञः युधिष्ठिरस्य, मन्युव्यवसायदीपनीः = क्रोधस्य उद्योगस्य च उद्दीपिकाः, गिरः = वाणी, उदाजहार= कथयामास।

कोष—'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इत्यमरः। 'सिद्धिस्तु मोक्षे निष्पत्तियोगयोः' इति हैमः। 'चक्रवर्ती सार्वभौमो नृपोऽन्यो मण्डलेश्वरः' इति चामरः।

अलंकार—सहेतुक वाक्यार्थोपन्यास से काव्यलिंग अलंकार है। वर्णावृत्ति से वृत्त्यनुप्रास भी है।

टिप्पणी—(1) द्रुपदात्मजा = आत्मनो जाता इत्यात्मजा (आत्मन्+जन्+ड कर्त्तरि स्त्रियाम्), द्रुपदस्य आत्मजा (ष. तत्पु.)

(2) द्विषताम् = द्विषन्तीति द्विषन्तः (द्विष्+शतृ कर्त्तरि) तेषाम्। शेषे षष्ठी।

(3) सिद्धिम् = सिध्+क्तिन् = सिद्धिः, ताम् सिद्धिम्।

(4) ततस्त्या = ततः आगता इति। ततस् + त्यप् + टाप् (अपाकृतिः का विशेषण)

(5) अपाकृतीः = अपाकरणं इति अप+आ+कृ+क्तिन् भावे अपाकृतिः, ताः।

(6) अक्षमा = क्षमते इति क्षम्+अच् स्त्रियाम् क्षमा, न क्षमा अक्षमा।

(7) मन्युव्यवसायदीपनीः = मन्युश्च व्यवसायश्च इति मन्युव्यवसायौ, तयोः दीपिन्यः मन्युव्यवसायदीपिन्यः ताः। तत्पुरुष समास।

(8) उदाजहार = उद् + आ + हृ + लिट् + अ।

भवादृशेषु प्रमदाजनोदितं,
भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम्।
तथापि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां,
निरस्तनारीसमयाः दुराधयः।। 28।।

अन्वयः—भवादृशेषु प्रमदाजनोदितम् अनुशासनम् अधिक्षेप इव भवति, तथापि निरस्तनारीसमयाः दुराधयः माम् वक्तुम् व्यवसाययन्ति।

शब्दार्थ—भवादृशेषु = आप जैसे लोगों के विषय में, प्रमदाजनोदितम् = स्त्रियों द्वारा कहा गया, अनुशासनम् = शिक्षा या उपदेश वचन, अधिक्षेप इव = अपमान के तुल्य, भवति = होता है, तथापि = फिर भी, निरस्तनारीसमयाः = नारीजनोचित सीमाओं को निरस्त करने वाली, दुराधयः = तीव्र मानसिक व्यथाएँ, माम् = मुझको, वक्तुम् = कहने के लिए, व्यवसाययन्ति = उद्यत करती हैं।

अनुवाद—इस पद्य में द्रौपदी अपनी असहनीय मानसिक पीड़ा की ओर इंगित करती हुई बिना मांगे परामर्श देने की धृष्टता के लिए क्षमायाचना करती हुई कहती है—

आप जैसे लोगों के प्रति नारीजन की कही हुई बातें अपमान के समान हैं, तथापि स्त्री-जाति की शालीनता को नष्ट कर देने वाली बुरी मनोव्यथाएँ मुझे कुछ कहने के लिए बाध्य कर रही हैं।

भावार्थ—द्रौपदी के कहने का भाव यह है कि आप जैसे नीति-निपुण विद्वान् के समक्ष मुझ जैसी साधारण स्त्री के द्वारा कर्तव्य मार्ग का उपदेश प्रदान करना सर्वथा अनुचित एवं धृष्टतापूर्ण है। यह सब मैं भली प्रकार जानती हूँ। फिर भी शत्रुओं की सफलता को सुनकर मेरे हृदय को जो वेदना हो रही है, वह मुझे यह सब कहने के लिए मजबूर कर रही है। द्रौपदी के कथन का आशय यह है कि मेरी मानसिक पीड़ा इतनी अधिक है कि उनके कारण मैं नारी की समाजस्वीकृत सामान्य विनयादि मर्यादाओं को तोड़कर अपने उद्‌गार प्रकट करने के लिए मजबूर हो गई हूँ।

संस्कृत-व्याख्या—अस्मिन् श्लोके द्रौपदी आत्मनः अयाचितपरामर्शस्य कारणं विवेच्य युधिष्ठिरं कथयति—

भवादृशेषु = भवत्सदृशेषु राजनीतिज्ञेषु, प्रमदाजनोदितं = साधारणस्त्रीजनकथितम्, अनुशासनम् = उपदेशवाक्यम्, अधिक्षेप इव = तिरस्कार इव, भवति = जायते। तथापि = वक्तुम् अनुचितत्वेऽपि, निरस्तनारीसमयाः = परित्याजितनारीमर्यादाः, माम् = द्रौपदीम्, दुराधयः = मानसिकव्यथाः, वक्तुम् = कथतियुम्, व्यवसाययन्ति = प्रेरयन्ति। न किञ्चिदयुक्तं दुःखिजनानामिति भावः।

कोष—'पुस्याधिर्मानसी व्यथा' इत्यमरः।

'समयाः शपथाचार-कालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः। 'प्रमदा मानिनी कान्ता ललना च नितणिनी' इति चामरः।

अलंकार—'अधिक्षेप इव' में उपमा अलंकार तथा 'वक्तुं व्यवसाययन्ति निरस्तनारी....' इत्यादि में सहेतुक पदार्थोपस्थापन से काव्यलिङ्ग अलंकार है।

टिप्पणी—(1) भवादृशेषु = भवन्तमिव पश्यन्ति आत्मानम् इति भवादृशाः पण्डिताः इत्यर्थः, तेषु। भवत् + दृश् + कञ् कर्मकर्त्तरि।

(2) प्रमदाजनोदितम् = प्र+मद्+णिच्+अच् भावे प्रमदः। प्रमदा इव जनः इति प्रमदाजनः (कर्मधारय)। प्रमदाजेन उदितम् इति प्रमदाजनोदितम्, तृतीया तत्पु.। उदितम् = वद्+क्त कर्मणि-उदितम्।

(3) अनुशासनम् = अनु+शास्+ल्युट्।

(4) अधिक्षेपः = अधि + क्षिप् + घञ्।

(5) निरस्तनारीसमयाः = नारीणा समयाः नारीसमयाः (ष. तत्पु.), निरस्ताः नारीसमयाः यैः ते, बहुब्रीहि समास।

(6) आधयः = आ+धा+कि (उपसर्गे घो किः) आधिः, ते आधयः।

(7) वक्तुम्=वच् + तुमुन्।

(8) व्यवसाययन्ति=वि+अव+सो+णिच्+लट्।

अखण्डमाखण्डलतुल्यधामभि—
श्चिरं धृता भूपतिभिः स्ववंशजैः।
त्वयात्महस्तेन मही मदच्युता,
मतङ्गजेन स्रगिवापवर्जिता।। 29।।

अन्वयः—आखण्डलतुल्यधामभिः स्ववंशजैः भूपतिभिः चिरम् अखण्डम् आत्महस्तेन मदच्युता मतङ्गजेन स्रक् इव धृता मही त्वया अपवर्जिता।

शब्दार्थ—आखण्डलतुल्यधामभिः = इन्द्र के समान तेज वाले, स्ववंशजैः = अपने ही कुल में उत्पन्न, भूपतिभिः = राजाओं के द्वारा, चिरम् = बहुत समय तक, अखण्डम् = पूर्णतया, धृता = धारण की गई, मही = पृथ्वी, त्वया = तुम्हारे द्वारा, आत्महस्तेन = अपने हाथों ही, मदच्युता = मदजल को बहाने वाले, मतंगजेन = मतवाले हाथी के द्वारा, स्रगिव = पुष्पमाला के समान, अपवर्जिता = त्याग दी गई।

अनुवाद—इस श्लोक में अपने अधिकारों के प्रति उपेक्षावृत्ति रखने वाले राजा युधिष्ठिर की आलोचना करती हुई द्रौपदी कहती है—इन्द्र के समान तेजस्वी अपने पूर्वजों के द्वारा चिरकाल तक अखण्ड रूप से उपभुक्त पृथ्वी को तुमने मतवाले हाथी के द्वारा फेंकी गई माला के समान अपने हाथों ही त्याग दिया है।

भावार्थ—द्रौपदी युधिष्ठिर को उपालम्भ देती हुई कहती है कि जिस सम्पूर्ण राज्यभूमि का इन्द्र के तुल्य प्रभावशाली आपके पूर्वज राजा लोगों ने उपभोग किया था, उस सम्पूर्ण राज्य को आपने अपने हाथ से उसी प्रकार छोड़ दिया है, जिस प्रकार मस्त हाथी अपने सिर पर रखी हुई सुन्दर माला को अपनी सूंड से खींचकर दूर फेंक देता है। यहाँ द्रौपदी यह संकेत करना चाहती है कि लोग तो राज्य-प्राप्ति हेतु कठिन प्रयास करते हैं, किन्तु आप तो वंश-परम्परा से प्राप्त उत्तराधिकार का भी संरक्षण करने में तत्पर नहीं रहते।

आखण्डलतुल्याधामभिः विशेषण के प्रयोग से द्रौपदी बताना चाहती है कि हमारे पूर्वज इन्द्र के समान तेजस्वी थे। अतः हमें भी स्वयं को उनके योग्य उत्तराधिकारी सिद्ध करना चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—अस्मिन् श्लोके युधिष्ठिरकृतां स्वत्वोपेक्षामालोचयन्ती द्रौपदी वदति—

आखण्डतुल्यधामभिः = इन्द्रतुल्यप्रभावैः, स्ववंशजैः = स्ववंशोत्पनैः, भूपतिभिः = नृपैः, चिरम् = चिरकालं यावत्, अखण्डम् = पूर्णतया, धृता = अधिकृता, मही = पृथ्वी राज्यं वा, त्वया = युधिष्ठिरेण, मदच्युता = मदजलस्राविणा, मतंगजेन = मत्तेन गजेन, स्रगिव = पुष्पमाला इव, आत्महस्तेन = निजकरेण (गज पक्षे निजशुण्डादण्डेन) अपवर्जिता = परित्यक्ता। स्वदोषादेवायमनर्थागम इत्यर्थः।

कोष— 'आखण्डलः सहस्राक्ष ऋभुक्षाः' इत्यमरः। 'धाम रश्मौ गृहे देहे स्थाने जन्मप्रभावयोः' इति मेदिनी। 'समग्रं सकलं पूर्णमखण्डं स्यादनूननके' इत्यमरः। 'हस्तकरे करिकदे सप्रकोष्ठकरेऽपि च' इति मेदिनी। 'माल्यं मालास्रजौ' इत्यमरः।

अलंकार—श्लोक में 'मही' उपमेय 'स्रक्' उपमान, 'इव' वाचक पद और त्यागरूप साधारण धर्म के प्रयोग से उपमा अलंकार है। 'आत्महस्तेन' में (युधिष्ठिर द्वारा) अपने हाथ से, (हस्ती द्वारा) अपने सूंड से छोड़ा या त्यागा अर्थ करने से श्लेष अलंकार भी है।

टिप्पणी—(1) आखण्डलतुल्यधामभिः = आखण्डलेन तुल्यं धाम येषां ते आखण्डलतुल्यधामानः (बहुव्रीहि समास), तैः।

(2) स्ववंशजैः = स्वस्य वंशः (ष. तत्पु.) तस्मिन् जाताः। अथवा स्ववंशे जायन्ते ये, ते स्ववंशजा (उपपद समास) तैः स्ववंशजैः। स्ववंश + जन् + ड + कर्त्तरि।

(3) अखण्डम् = न खण्ड अखण्डः (नञ् तत्पु.) तत् यथास्यात् तथा इति अखण्डम्।

(4) मदच्युता = मदं च्योतयतीति मदच्युत् (मद+च्यु+क्विप्, तेन)।

(5) मतंगजेन = मतङ्गात् जायते इति मतङ्गजः तेन मतंगजेन। मतङ्ग+जन्+ड प्रत्यय।

(6) आत्महस्तेन = आत्मनः हस्त इति आत्महस्तः, तेजन (तत्पु. समास)।

(7) स्रक् = सृज्यते इयम् इति स्रक् (सज्+क्विप्)।

(8) भूपतिभिः = भुवः पतय इति भूपतयः, तैः भूपतिभिः।

(9) अपवर्जिता = अप + वृज् + णिच् + क्त कर्मणि स्त्रियाम्।

Dec 2015 V.V.Imp

June 2012

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं,
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधा—
नसंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः ।।30।।

शठे शाठ्यं समाचरेत्

अन्वयः—ये मायाविषु मायिनः न भवन्ति ते मूढधियः पराभवम् व्रजन्ति, शठाः तथाविधान् असंवृताङ्गान् निशिता इषवः इव प्रविश्य घ्नन्ति।

शब्दार्थ—ये = जो, मायाविषु = कपटी जनों के सम्बन्ध में, मायिनः = कपट व्यवहार करने वाले, न भवन्ति = नहीं होते हैं, ते = वे, मूढधियः = मूर्ख बुद्धि के लोग, पराभवम् = पराजय अपमान को, व्रजन्ति = प्राप्त होते हैं, शठाः = धूर्त लोग, तथाविधान् = उस प्रकार के, असंवृताङ्गान् = (कवच आदि से) न ढके हुए (नग्न) शरीर वालों को, निशिताः = तीक्ष्ण धारवाले, इषवः इव = बाणों के समान, प्रविश्य = प्रवेश करके, घ्नन्ति = नष्ट कर देते हैं।

अनुवाद—इस श्लोक में द्रौपदी दुष्ट लोगों के प्रति "जैसे को तैसा" व्यवहार करने का परामर्श देती हुई युधिष्ठिर से कहती है—जो मायावियों के साथ मायावी नहीं बनते वे मूढ़बुद्धि पराजय को प्राप्त करते हैं। शठ लोग ऐसे व्यक्तियों में प्रवेश कर (अर्थात् उनके आत्मीय बनकर) उन्हें मार डालते हैं, जैसे तीक्ष्ण बाण नग्न शरीर वाले योद्धा के भीतर घुसकर उसे मार डालते हैं।

भावार्थ—जो मायावी लोगों के साथ प्रवंचना का व्यवहार नहीं करते हैं, वे पराजय को प्राप्त होते हैं, क्योंकि धूर्त लोग ऐसे अनावृत्त शरीर वाले लोगों के अन्तःप्रविष्ट होकर उन्हें उसी प्रकार मार डालते हैं, जैसे तीक्ष्ण बाण कवचरहित शरीर वाले लोगों के भीतर प्रविष्ट होकर उन्हें मार डालते हैं। अतः मायावी लोगों के साथ सज्जनता का व्यवहार नहीं करना चाहिए। इस श्लोक में द्रौपदी के कथन द्वारा इस राजनीतिक सिद्धान्त का समर्थन किया गया है कि धूर्त शत्रु के साथ धूर्तता करना ही उचित है। जो सज्जन धूर्तजनों के साथ शान्तिपूर्ण व्यवहार करते हैं,वे धोखा खा जाते हैं। जैसा कि कहा जाता है "आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः।"

संस्कृत-व्याख्या—ये = ये जनाः, मायाविषु = कपटिषु, मायिनः = कपटिनः, नः = नहि, भवन्ति = जायन्ते, ते = ते नराः, मूढधियः = मूर्खाः, पराभवम् = तिरस्कारम्, व्रजन्ति = प्राप्नुवन्ति, शठाः = धूर्ताः, तथाविधान् = तादृशान्, असंवृताङ्गान् = अनाच्छादितशरीरावयवान्, निशिताः = तीक्ष्णाः, इषवः इव = शराः, इव, प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, घ्नन्ति = विनाशयन्ति।

कोष—'माया स्याच्छाम्बरीबुद्ध्योर्मायः पीताम्बरेऽसुरे' इति मेदिनी। 'अथ निशितक्ष्णुतशातानि तेजिते' इत्यमरः। 'कलम्बमार्गणशराः पत्री रोप इषुर्द्वयोः' इत्यमरः। "पराभवः परिभवः पराजयः" इत्यमरः।

अलंकार—इषवः इव में उपमा अलंकार है। तथा सामान्य कथन "जो शठता के साथ शठता का व्यवहार नहीं करते, वे पराभव को प्राप्त करते हैं" का तीक्ष्ण बाण नग्न शरीर में प्रवेश कर वध डालते हैं, विशेष से समर्थन होता है। अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

टिप्पणी—(1) मूढधियः = ध्यायति अनया इति धीः (ध्यै+क्विप्) मुह्+क्त कर्त्तरि स्त्रियाम् = मूढा। मूढा धीः येषां ते (बहुव्रीहि)

(2) पराभवम् = परि + भू + अप् भावे तम्।

(3) मायाविषु = माया अस्ति एषामिति मायाविनः। (माया+विनि+मत्वर्थे) तेषु।

(4) मायिनः = माया अस्ति एषामिति मायिनः (माया+इति मत्वर्थे)।

(5) तथाविधान् = तद् + थाल्। तथाविधा येषु ते तान् (बहुव्रीहि)

(6) असंवृत्ताङ्गान् = सम् + वृ + क्त। न संवृतम् असंवतृम् (नञ् तत्पुरुष) तादृशम् अंग येषां ते (बहुव्रीहि) तान्।

(7) निशिताः = नि + शो + क्त = निशितः, ते निशिताः।

गुणानुरक्तामनुरक्तसाधनः,
कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः।
परैस्त्वदन्यः क इवापहारये—
न्मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम्॥31॥

अन्वयः—अनुरक्तसाधनः कुलाभिमानी नराधिपः त्वदन्यः कः इव गुणानुरक्ताम् कुलजाम् मनोरमाम् आत्मवधूम् श्रियम् परैः अपहारयेत्।

शब्दार्थ—अनुरक्तसाधनः = अनुकूल साधनों वाला, कुलाभिमानी = अपने कुल पर गर्व करने वाला, नराधिपः = राजा, त्वत् = आपसे, अन्यः = अतिरिक्त दूसरा, कः इव = कौनसा, गुणानुरक्ताम् = गुणों से अनुरक्त, कुलजाम् = (i) अच्छे कुल से उत्पन्न स्त्री को, (ii) कुल परम्परा से आयी हुई लक्ष्मी को, मनोरमाम् = मनोहर, आत्मवधूम् = अपनी पत्नी के, इव = तरह, श्रियम् = लक्ष्मी को, परैः = शत्रुओं द्वारा, अपहारयेत् = अपहरण करा दे।

अनुवाद—अनुकूल साधनों वाला, कुलाभिमानी, तुम्हारे अतिरिक्त और कौन राजा गुणों का अनुरक्त, कुलीन एवं मन को रमाने वाली मनोहर अपनी प्रियतमा के समान राजलक्ष्मी को शत्रुओं से अपहृत करायेगा।

भावार्थ—युधिष्ठिर ने द्यूतक्रीडा में राजलक्ष्मी खो दी। द्रौपदी इस कृत्य को अत्यन्त निन्दनीय मानती है, वह युधिष्ठिर को उपालम्भ देती हुई कहती है कि जैसे कोई व्यक्ति अपनी कुल की मर्यादाओं को छोड़कर अपनी पत्नी को दूसरों को सौंप दे, तुमने भी उसी तरह अपने वीर भाइयों के होने पर भी, क्षत्रिय कुल की आन-बान को छोड़कर अपने पूर्वजों से चली आई राज्यलक्ष्मी को भी शत्रुओं को सौंप दिया है, अर्थात् तुम पुरुषार्थ, पराक्रम एवं स्वाभिमान रहित व्यक्ति हो, जो अपने राज्य की रक्षा करने की अपेक्षा उसे शत्रुओं को सौंप दिया है।

यहाँ वधू के लिए गुणानुरक्ता, कुलीन तथा मनोरम विशेषणों के प्रयोग से द्रौपदी कहना चाहती है कि उपर्युक्त विशेषताओं से युक्त पत्नी की उपेक्षा तो कथमपि उचित नहीं मानी जा सकती। इसी प्रकार यदि शत्रुओं के द्वारा राजलक्ष्मी का अपहरण कोई शक्तिशाली शासक देखता रहे तो यह घोर अपमानजनक बात होती है।

संस्कृत-व्याख्या—अनुरक्तसाधनः = अनुकूलसाधनसम्पन्नः, कुलाभिमानी = स्ववंशाभिमानी, नराधिपः = नृपतिः, त्वदन्यः = युधिष्ठिराद् भिन्नः, कः इव = को नु, गुणानुरक्ताम् = गुणेषु अनुरागवतीम्, कुलजां = वधूपक्षे कुलीनाम्, लक्ष्मीपक्षे कुलक्रमागताम्, मनोरमाम् = मनोहराम्, आत्मवधूम् इव = स्वप्रियतमाम् इव, श्रियम् = राजलक्ष्मीम्, परैः =शत्रुभिः, अपहारयेत् = स्वयमेवापहारं कारयेत्।

कोष—'वधूर्जाया स्नुषा स्त्री चेत्यमरः। कुलान्यभिजनान्वयौ वंशोऽन्ववायः' इत्यमरः। 'प्रभुः परिवृढोऽधिपः' इत्यमरः । 'नारी सीमन्तनी वधूः' इत्यमरः। 'पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया' इत्यमरः।

अलंकार—'कुलजां' में श्लेष है, परन्तु आत्मवधूमिव श्रियम् में सादृश्य वर्णन होने से उपमा अलंकार है। यथा–'साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः।'

टिप्पणी—(1) अनुरक्तसाधनः = अनुक्तं साधनं यस्य सः। बहुव्रीहि समास।

(2) गुणानुरक्ताम् = गुणैः अनुरक्ता इति गुणानुरक्ता, ताम्, तत्पुरुष समास। अनु + रञ्ज् + क्त, ताम्।

(3) कुलाभिमानी = कुलस्य अभिमानः (अभि + मन् + घञ् कुलाभिमान् + इनि मत्वर्थे)

(4) कुलजाम् = कुले जाताम् (कुल + जन् + ड + टाप्) ताम्।

(5) मनोरमाम् = मनसो रमयतीति मनोरमा (मन + रम् + णिच् + अच् + टाप्) ताम्। (ष. तत्पु.)

(6) आत्मवधूम् = आत्मनः वधूः, ताम् (ष. तत्पु.)।

(7) श्रियम् = श्रयते हरिं सा श्रीः ताम्, क्विप्।

(8) अपहारयेत् = अप + हृ + णिच् + लिङ् + प्रथम पुरुष एकवचन।

most

भवन्तमेतर्हि मनस्विगर्हिते,
विवर्तमानं नरदेववर्त्मनि।
कथं न मन्युर्ज्वलयत्युदीरितः
शमीतरुं शुष्कमिवाग्निरुच्छिखः।।32।।

2014 June

अन्वयः—(हे) नरदेव! एतर्हि मनस्विगर्हिते वर्त्मनि विवर्तमानम् भवन्तम् उदीरितः मन्युः शुष्कम् शमीतरुम् उच्छिखः अग्निरिव कथम् न ज्वलयति।

शब्दार्थ—हे नरदेव = हे राजन्, एतर्हि = इस समय, मनस्विगर्हिते = वीरों द्वारा निन्दित, वर्त्मनि = मार्ग में, विवर्तमानम् = स्थित, विद्यमान, भवन्तम् = आपको, उदीरितः = उद्दीप्तः, मन्युः = क्रोध, शुष्कम् = सूखे हुए, शमीतरुम् = शमीनामक वृक्ष को, उच्छिखः = ऊँची लपटों वाली, अग्निः इव = आग के समान, कथं न = क्यों नहीं, ज्वलयति = प्रज्वलित कर देता।

अनुवाद—हे नरेन्द्र! इस समय मनस्विजनों के द्वारा निन्दित मार्ग में स्थित हुए आपको उद्दीप्त क्रोध उसी तरह क्यों नहीं प्रज्वलित कर देता, जैसे उठती हुई लपट शमी के वृक्ष को जला देती है।

भावार्थ—द्रौपदी के हृदय में शत्रु से प्रतिशोध की आग भड़क रही है। वह युधिष्ठिर के हृदय में भी शत्रु के प्रति क्रोधाग्नि जगाना चाहती है। द्रौपदी युधिष्ठिर के पौरुष को उद्दीप्त करने के प्रयास में उनसे कहती है कि वे जिस मार्ग पर इस समय आरूढ़ हैं, वह मार्ग वीरों का न होकर कायरों का है तथा मनस्विगण द्वारा निन्दित है। वह कहती है जिस तरह सूखे शमी के वृक्ष को धधकती हुई आग जला डालती है, उसी प्रकार आपको भी उद्दीप्त हुआ क्रोध शत्रुओं से बदला लेने के कारण क्यों नहीं उत्साहित करता?

'नरदेव' संबोधन राजा को अपने वास्तविक तेजस्वी रूप का स्मरण कराने के लिए प्रयुक्त हुआ है।

संस्कृत-व्याख्या—हे नरदेव = राजन्। एतर्हि = साम्प्रतम्, मनस्विगर्हिते = शूरवीरनिन्दिते, वर्त्मनि = मार्गे, विवर्तमानम् = विद्यमानम्, (शत्रुकृत- दुर्दशामनुभवन्तमित्यर्थः) भवन्तम् = युधिष्ठिरम्, उदीरितः = उद्दीपितः, मन्युः = क्रोधः, शुष्कम् = नीरसम्, शमीतरुम् = शमीवृक्षम्, उच्छिखः = उद्गतज्वालः, अग्निः इव =वह्निरिव, कथं = केन प्रकारेण, न = नहि, ज्वलयति = दहति।

कोष—'एतर्हि संप्रतीदानीमधुना साम्प्रतं तथा' इत्यमरः। 'घृणिज्वाले अपि शिखे' इत्यमरः। 'अयनं वर्त्म मार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः', 'मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि' इति चामरः। 'शमी सक्तुफला शिवा' इत्यमरः।

अलंकार—तृतीय चरण में 'कथं न मन्युर्ज्वलयति' कथन में आक्षेप अलंकार है। 'शुष्कमिव शमीतरुम्' इत्यादि में उपमा अलंकार है। इस तरह इसमें तिलतण्डुलन्याय स संसृष्टि अलंकार है।

टिप्पणी—(1) एतर्हि—इदम् को 'एतेतौ रथोः' सूत्र से एत आदेश होकर 'इदमोर्हिल्' सूत्र से हिल् प्रत्यय हुआ (इदम् = एत + र्हिल्)

(2) मनस्विगर्हिते = मनस्विभिः गर्हितम् इति मनस्विगर्हितम् तस्मिन्। तत्पुरुष समास। मनस्वी = मनस् + विनि। गर्हितः = गर्ह + क्त।

(3) विवर्तमानः = वि + वृत् + शानच्

(4) उदीरितः = उद् + ईर् + णिच् + क्त।

(5) शमीतरुम् = शमी चासौ तरुश्च, तम्, कर्मधारय समास।

(6) शुष्कम् = शुष् + क्त। "शुषः कः सूत्र से त के स्थान पर "क"।

(7) उच्छिखः = उद्गता शिखा असौ (बहुव्रीहि)।

अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां,
भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना,
न जातहार्देन न विद्विषादरः ।। 33 ।।

अन्वयः—अवन्ध्यकोपस्य आपदाम् विहन्तुः देहिनः स्वयमेव वश्याः भवन्ति। अमर्षशून्येन जन्तुना जातहार्देन (सता) जनस्य आदरो न (भवति), विद्विषादरः न (भवति)।

शब्दार्थ—अवन्ध्यकोपस्य = सफल क्रोध वाले, आपदां विहन्तुः = आपत्तियों को नष्ट करने वाले के, देहिनः = प्राणी, स्वयमेव = अपने आप ही, वश्याः = वशीभूत, भवन्ति = हो जाते हैं, अमर्षशून्येन = क्रोधरहित, जन्तुना = प्राणी के द्वारा, जातहार्देन = मित्रता करने से, जनस्य = मानव का, आदरो न = सम्मान नहीं होता, विद्विषादरो न = शत्रुता होने पर भय नहीं होता।

अनुवाद—सफल क्रोध वाले तथा आपत्तियों के विनाशक मनुष्य के वश में प्राणी अपने आप ही वशीभूत हो जाते हैं। परन्तु क्रोधशून्य व्यक्ति के साथ स्नेह होने से लोग आदर नहीं करते हैं और शत्रु होने से भयभीत नहीं होते हैं।

भावार्थ—द्रौपदी कहती है कि यह सत्य है कि क्रोध मानव के आन्तरिक शत्रुओं में से एक है। उसे एक प्रकार का मनोविकार माना जाता है, किन्तु शत्रु के प्रति उचित क्रोध क्षत्रिय का गुण होता है। उसका सर्वथा परित्याग उचित नहीं होता। जो राजा प्रजाजनों में निग्रह और अनुग्रह दोनों का यथासमय प्रयोग करने में समर्थ होता है, सभी प्राणी स्वयं ही उसके वशवर्ती हो जाते हैं। परन्तु जिसे कभी क्रोध आता ही नहीं, हमेशा शान्त ही बैठा रहता है, ऐसे राजा का प्रेम और वैर दोनों ही व्यर्थ हैं। न तो उसके क्रोध से कोई डरता है तथा न प्रेम होने पर उसका कोई सम्मान करता है। अतः उचित अवसर पर क्रोध करना आवश्यक है। शक्तिशाली का क्रोध कभी निष्फल नहीं होता। प्रजा ऐसे वीर पुरुष की अधीनता स्वयं ही स्वीकार कर लेती है। अतः द्रौपदी युधिष्ठिर को शत्रु के प्रति सफल क्रोधपूर्ण रुख अपनाने के लिए प्रेरित करती है।

संस्कृत-व्याख्या—अस्मिन् श्लोके अवन्ध्यकोपस्य क्षत्रियस्य प्रशंसां कुर्वती द्रौपदी कथयति—

अवन्ध्यकोपस्य = अमोघक्रोधस्य, आपदाम् = विपदानाम्, विहन्तुः = नाशकस्य, देहिनः = प्राणिनः, स्वयमेव = स्वत एव, वश्याः = वशीभूताः, भवन्ति = जायन्ते, अमर्षशून्येन = अक्रोधेन, जन्तुना = प्राणिना, जातहार्देन सता = जातस्नेहेन सता, जनस्य = नरस्य, आदरः = समादरः, न भवति = न जायते, विद्विषाः = द्विषता सता, दरः = भयम् न भवति। अथवा विद्विषा = शत्रुणा, आदरः = सम्मानः, न = नैव भवति।

भावोऽयं यत् क्रोधरहितस्य जनस्य मित्रत्वे न सम्मानो भवति न तस्य शत्रुत्वे किंचिद् भयं भवति। अतः स्थाने कोपः कार्यः, अस्थाने तु कोपस्त्याज्य एवेति भावः।

कोष—'कोपक्रोधासमर्षरोषप्रतिधारूढ क्रुधौ' इत्यमरः। 'प्रेमा न प्रियता हार्दं प्रेम स्नेहः' इत्यमरः। 'दरोऽस्त्रियां भये श्वभ्रे' इति चामरः।

अलंकार—'विद्विषादरः' में पदभङ्ग श्लेष अलंकार है। 'अवन्ध्यकोपस्य' एवं 'अमर्षशून्येन' इत्यादि विशेषण पदार्थों का सहेतु उपन्यास होने से काव्यलिङ्ग अलंकार है।

टिप्पणी—(1) अवन्ध्यकोपस्य = न वन्ध्यः, (नञ् समास), अवन्ध्यः कोपः यस्य सः, तस्य (बहुव्रीहि समास)।

(2) आपदाम् = आ + पद + क्विप् (भावे) षष्ठी बहुवचन।

(3) विहन्तुः = वि + हन् + तृच् (षष्ठी एकवचन)

(4) देहिनः = देहः अस्ति एषामिति, देह + इनि + मत्वर्थे देहिनः।

(5) वश्या = वश् + यत् = वश्यः इति ते वश्याः।

(6) अमर्षशून्येन = मृष् + घञ् = मर्षः, न मर्षः अमर्षः (नञ् तत्पुरुष) अमर्षेण शन्यः, तेन, 'हेतौ' इति तृतीया।

(7) जातहार्देन = हृदयस्य कर्म हार्दम्, (हृदयस्य हृदादेशः) हृदय + अण्। जातं हार्दम् अस्य यस्य असौ, तेन (बहुव्रीहि)

(8) विद्विषा = वि + द्विष् + क्विप् (तृतीया एकवचन)

परिभ्रमँल्लोहितचन्दनोचितः,
पदातिरन्तर्गिरिरेणुरूषितः।
महारथः सत्यधनस्य मानसं,
दुनोति नो कच्चिदयं वृकोदरः॥ 34॥

most
भीम
युधिष्ठिर केलिए
भीम केलिए

अन्वयः—लोहितचन्दनोचितः महारथः रेणुरूषितः पदातिः अन्तर्गिरि परिभ्रमन् अयम् वृकोदरः सत्यधनस्य (तव) मानसम् नो दुनोति कच्चित्।

शब्दार्थ—लोहितचन्दनोचितः = लाल चन्दन के लेप के योग्य, महारथः = महारथी, रेणुरूषितः = धूल से धूसरित, पदातिः = पैदल, अन्तर्गिरि = पर्वत-पर्वत पर, परिभ्रमन् = घूमता हुआ, अयम् = यह, वृकोदरः = भेड़िए के समान उदर वाला भीम, सत्यधनस्य = सत्य रूप धन वाले (तव = आपके), मानसम् = मन को, चित्त को, कच्चित् = क्या न दुनोति = पीड़ित नहीं करता।

अनुवाद—लाल चन्दन से प्रसाधन करने योग्य महान् योद्धा (किन्तु अब) धूलि से धूसरित होकर पैदल चलने वाला तथा पर्वत-पर्वत भटकता हुआ यह भीमसेन सत्य को ही धन मानने वाले आपके मन को क्यों पीड़ित नहीं करता है ?

भावार्थ—इस श्लोक में द्रौपदी भीमसेन की दुरावस्था का वर्णन कर युधिष्ठिर को युद्ध के लिए उत्तेजित करती हुई कहती है कि जो भीमसेन पहले रक्त-चन्दन का अंगराग लगाने का अभ्यस्त था तथा रथ द्वारा ही गमनागन करने वाला था, वही भीमसेन आज धूलि से सना हुआ, पैदल ही दुर्गम पर्वतों पर फल-मूलादि लाने तथा मृगया के लिए भटकता रहता है। क्या इस बात से सत्यवादी आपका मन व्यथित नहीं होता है ?

यहाँ सत्यधनस्य विशेषण का प्रयोग साभिप्राय है। द्रौपदी कहना चाहती है कि अपने जुए में दिए गए वचन को सिद्ध करने के लिए राज्य गंवा दिया। भीम की दुर्दशा इस तथाकथित सत्यता का ही परिणाम है। वह व्यंग्यपूर्वक पूछती है कि भीमसेन की ऐसी दुर्दशा देखकर भी क्या आप सत्यपरायण बने रहेंगे ? शत्रुओं पर विजय पाने का कुछ उद्योग नहीं करेंगे? वास्तव में आपकी शान्तप्रियता और सत्यवादिता के कारण ही हम सबकी यह दुर्दशा है, पर आप अब भी शान्त बने हुए हैं।

संस्कृत-व्याख्या—भीमस्य दुर्दशायाः वर्णनं कुर्वती द्रौपदी कथयति-लोहितचन्दनोचितः = रक्तचन्दनलेपयोग्यः, महारथः = विशालरथचारी (इतिपुरा अधुना तु) रेणुरूषितः = धूलधूसरितः, पदातिः = पदचारी, अन्तर्गिरि = पर्वतेषु, सत्यघनस्य = सत्य एव धनं मन्यमानस्य (तव = युधिष्ठिरस्य), मानसं = चेतः, न दुनोति = पीडियति, कच्चित् = किम् ?

कोष—'अभ्यस्तेऽप्युचितं न्याय्यम्' इति यादवः। 'रेणुर्द्वयो स्त्रियां धूलिः पासुर्ना, न द्वयोः सा:' इत्यमरः। 'लोहितो रोहितो रक्तः' इत्यमरः। 'पदातिपत्तिपदगपादातिकपदाजयः पदगश्च पदिकश्च' इत्यमरः। 'कच्चित्कामप्रवेदने' इति चामरः। 'चित्तं तु चेतो हृदयं हृन्मानसं मनः' इत्यमरः।

अलंकार—अनुप्रास, विषम, आक्षेप और परिकर अलंकार प्रयुक्त हैं। साभिप्रायविशेषणैः परिकरः। विरूपयोः संघटना या च तद् विषमं मतम्।

टिप्पणी—(1) लोहितचन्दनोचित: = लोहितं चन्दनम् इति लोहितचन्दनं (कर्मधारय) उचितं लोहितचन्दनं यस्य स: लोहितचन्दनोचित: (बहुव्रीहि समास)।

(2) रेणुरूषित: = रेणुभि: रूषित: (तृतीया तत्पु.), रूष् + क्त कर्त्तरि।

(3) महारथ: = महान् रथो यस्य स: (बहुव्रीहि)।

(4) परिभ्रमन् = परि + भ्रम् + शतृ।

(5) सत्यधनस्य = सत्यं धनं यस्य स: सत्यधन:, तस्य (बहुव्रीहि)।

(6) पदाति: = पदाभ्यां अततीति पदाति: (पद + अत् + इण्, पदादेश:)।

(7) वक्रोदर: = वृकस्योदरमिव उदरम् यस्य (षष्ठी तत्पुरुष गर्भितबहुव्रीहि)

(8) मानसम् = मन: एव मानसम् (स्वार्थे अण्) तत्, मनस् + अण्

(9) अन्तर्गिरि = गिरिषु अन्त: इति अन्तर्गिरि (अव्ययीभाव)।

(10) दुनोति = दुञ् + लट् प्रथम पुरुष एकवचन।

(11) कच्चित् = कच्चचिच्च द्वयो: समाहार: (द्वन्द्वसमास), कम् + विच्, चि + क्विप्।

विजित्य य: प्राज्यमयच्छदुत्तरान्,
कुरूनकुप्यं वसु वासवोपम:।
स वल्कवासांसि तवाधुनाहरन्,
करोति मन्युं न कथं धनञ्जय:।। 35।।

अन्वय:—वासवोपम: य धनञ्जय: उत्तरान् कुरून् विजित्य प्राज्यम् अकुप्यम् वसु अयच्छत्, स अधुना तव वल्कवासांसि आहरन् कथम् (तव) मन्युम् न करोति।

शब्दार्थ—वासवोपम: = इन्द्र के तुल्य, य: = जो, धनञ्जय: = अर्जुन, उत्तरान् कुरून् = उत्तर कुरुप्रदेशों को, विजित्य = जीतकर, प्राज्यम् = प्रचुर मात्रामें, अकुप्यम् = सोना चाँदी रूप, वसु = धन को, अयच्छत् = देता था, स: = वह, अधुना = अब, तव = आपके, वल्कवासांसि = वल्कल वस्त्रों को, आहरन् = लाता हुआ, कथम् = क्यों, (तव = आपके), मन्युम् = क्रोध को, न करोति = नहीं करता है?

अनुवाद—इन्द्र के समान पराक्रमी जिस अर्जुन ने उत्तर कुरु देशों को जीतकर प्रचुर मात्रा में सोना-चाँदी रूपी धन (आपको) दिया था, वह अब आपके लिए वल्कल वस्त्र लाता हुआ (आपके) क्रोध को कैसे नहीं उद्दीप्त करता ?

भावार्थ—इस श्लोक में अर्जुन की दशा का वर्णन करते हुए द्रौपदी कहती है कि यह अर्जुन पराक्रम में इन्द्र के तुल्य है। वह पूर्व में आपको साधारण जनों की पहुँच से परे उत्तर कुरु देशों को जीतकर प्रचुर मात्रा में सोना–चाँदी दिया करता था, वही अर्जुन वर्तमान

में आपके पहिन के लिए वल्कल वस्त्र लाकर देता है। यहाँ अर्जुन के अतीत और वर्तमान रूप की तुलना के माध्यम से द्रौपदी यह बताना चाहती है कि यह परिवर्तन केवल युधिष्ठिर के कारण हुआ है। अर्जुन को ऐसी स्थिति में देखने के पश्चात् भी युधिष्ठिर के मन में क्षोभ अथवा क्रोध उत्पन्न नहीं होता, यह बड़े आश्चर्य की बात है।

संस्कृत-व्याख्या—अर्जुनस्य दुर्दशायाः वर्णनं कुर्वती द्रौपदी युधिष्ठिरं कथयति–

वासवोपमः = इन्द्रतुल्यः, यः = अर्जुनः, उत्तरान् कुरून् = उत्तरकुरुनामकान्, देशान् विजित्य = विजयं कृत्वा, प्राज्यम् = प्रचुरम्, अकुप्यम् = हेमरूपात्कम्, वसु = धनम्, अयच्छत् = दत्तवान्, सः = अर्जुन, अधुना = साम्प्रतं वनवाससमये, तव = भवतः युधिष्ठिरस्य, वल्कवासांसि = वल्कल वस्त्राणि, आहरन् = आनयन्, मन्युम् = क्रोधम् कथम् = केन कारणेन, न करोति = न विदधाति इत्यर्थः।

कोष—'प्रभूतं प्रचुरं प्राज्यम्' इत्यमरः। 'स्यात् कोषं च हिरण्यं च हेमरूप्ये कृताकृते, 'ताभ्यां यदन्यत् तत्कुप्यम्' इत्यमरः। 'वासवो वृत्रहा वृषा' इत्यमरः।

अलंकार—अनुप्रास, विषम, उपमा एवं परिकरांकुर अलंकार है। 'साभिप्राये विशेष्ये तु भवेत्परिकरांकुरः' इति।

टिप्पणी—(1) वासवोपमः = वासवः उपमा यस्य सः। बहुव्रीहि। वासव = वसु + अण्।

(2) धनञ्जयः = धनं जयति इति धनञ्जयः (उपपद समास) धन + जि + खच् प्रत्यय।

(3) प्राज्यम् = प्र + अज् + यत्।

(4) अकुप्यम् = न कुप्यम् अकुप्यम्, नञ् समास। हेमरूप्याभ्यासमन्यस्य ताम्रादेर्धातोः परिमाणं कुप्यम्, ताभ्यां हेमरूप्याभ्यामन्यद् अकुप्यम्।

(5) वल्कवासांसि = वल्कानि एव वासांसि इति वल्कवासांसि, तानि वल्कल वासांसि (धर्मधारय)। वल्कम् = वल् संवरणे + कप्रत्ययः, वस्यते आच्छाद्यते अनेनेति वस् + असुन् करणे–वासस्।

(6) आहरन् = आ + हृ + शतृ।

(7) कथम् = किम् प्रकारार्थे + थम्, कादेशश्च।

(8) करोति = कृ + लट् प्र. पु. एकवचन।

वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती, नकुल - सहदेव

कचाचितौ विष्वगिवागजौ गजौ।

नकुल-सहदेवौ **कथं त्वेतौ धृतिसंयमौ यमौ,**

विलोकयन्नुत्सहसे न बाधितुम्।। 36।।

अन्वयः—वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती विष्वक् कचाचित्तौ अगजौ गजौ इव एतौ यमौ विलोकयन् त्वम् कथम् धृतिसंयमौ बाधितुम् न उत्सहसे।

शब्दार्थ—वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती = वन भूमि में शयन करने से जिनकी देह कठोर हो गई है (आकृति शब्द का अर्थ देह है जैसा कि वैजयन्ती कोश से ज्ञात होता है), विष्वक् = सब ओर से, कचाचित्तौ = केशों से व्याप्त शरीर वाले अर्थात् संस्काराभावश जिनके केश सर्वत्र बिखरे हुए हैं, अगजौ = पर्वत पर उत्पन्न, गजौ इव = हाथियों के समान (प्रतीत होने वाले), एतौ यमौ = इन यमज माद्रीसुत नकुल सहदेव को, विलोकयन् = देखते हुए, त्वम् = आप, कथम् = कैसे, क्यों, धृतिसंयमौ = धैर्य और संयम को, बाधितुम् = छोड़ने के लिए, न उत्सहसे = उत्साह नहीं दिखाते हो।

अनुवाद—वन प्रदेश में शयन करने के कारण कठोर हुए शरीर वाले, चारों ओर बालों से व्याप्त, पर्वत के हाथियों के समान इन दोनों यमज माद्रीसुत नकुल, सहदेव को देखते हुए आप धैर्य और संयम छोड़ने के लिए क्यों नहीं प्रोत्साहित होते ?

भावार्थ—इस श्लोक में द्रौपदी नकुल व सहदेव की स्थिति का तुलनात्मक वर्णन प्रस्तुत कर युधिष्ठिर को धैर्य त्यागने हेतु बाध्य करती है। द्रौपद्री कहती है कि वन की भूमि पर शयन करने से जिनका शरीर कठोर हो गया है और जो सब ओर से संस्काराभाव बिखरे हुए केशों से व्याप्त शरीर वाले हैं, ऐसी दुर्दशायुक्त नकुल, सहदेव को देखते हुए भी आप अब भी सन्तोष और संयम धारण किए हुए उत्साहहीन बने हुए हैं, यह बहुत आश्चर्य की बात है।

ये दोनों युधिष्ठिर के लिए विशेष स्नेहपात्र एवं लालन योग्य थे, उनकी दुर्दशा को सहन करना कथमपि उचित नहीं है। यह कहकर द्रौपदी युधिष्ठिर को युद्ध के लिए उद्यत होने की प्रेरणा देती है।

संस्कृत-व्याख्या—अस्मिन श्लोके द्रौपदी नकुल-सहदेवयोः दुर्दशां वर्णयति—

वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती = वनभूमिशयनकठोरीकृतशरीरौ, विष्वक् = सर्वतः, कचाचित्तौ = केशव्याप्तौ, अगजौ = पर्वतीयौ, गजौ इव = करिणौ यथा, एतौ = इमौ, यमौ = युगपज्जातौ (नकुलसहदेवौ), विलोकयन् = पश्यन्, त्वम् = युधिष्ठिरः, कथम् = केन कारणेन, धृतिसंयमौ = धैर्यं नियमं च, बाधितुम् = त्यक्तुम्, न = नहि, उत्सहसे = प्रयतसे।

कोष—'आकारो देह आकृतिः' इति वैजयन्ती। 'समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपि' इत्यमरः। 'यमो दण्डधरे ध्वाङ्क्षे संयमे यमजेऽपि च' विश्वः। 'धृतिर्योगान्तरे

धैर्ये धारणाध्वरतुष्टिषु' इति विश्वः। 'कचाः केशाः शिरोरुहाः' इत्यमरः। 'गहनं काननं वनम्' इति चामरः।

अलंकार—'अगजौ गजौ' तथा 'संयमौ यमौ' में यमक अलंकार है। वर्णावृत्ति से अनुप्रास भी है। 'यमौ गजौ इव' में उपमा अलंकार है। आक्षेप भी है।

टिप्पणी—(1) वनान्तशय्याकठिनीकृताकृती = वनान्तशय्या कठिनीकृता आकृतिः ययौः तौ, बहुव्रीहि समास।

(2) विष्वक् = वि + सु + अञ्च् + क्विन्।

(3) कचाचितौ = कचैः अचितौ इति कचाचितौ (तृतीय तत्पु.)।

(4) अगजौ = न गच्छतीति अगः (नञ् + गम् + ड कर्तरि) अगे अगात् वा जातौ इति अगजौ (अग + जन् + ड कर्त्तरि)।

(5) विलोकयन् = वि + लोक + णिच् + शतृ।

(6) धृतिसंयमौ = धृतिश्च संयमश्चेति तौ (द्वन्द्व समास), धृति = धृ + क्तिन्, संयम =सम् + यम् + अप् भावे।

(7) बाधितुम् = बाध् + तुमुन्।

(8) उत्सहसे = उत् उपसर्ग + सह् + लट् आत्मनेपद।

इमामहं वेद न तावकीं धियं,
विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः।
विचिन्तयन्त्या भवदापदां परां,
रुजन्ति चेतः प्रसभं ममाधयः॥37॥

अन्वयः—इमाम् तावकीम् धियम् अहम् न वेद, चित्तवृत्तयः विचित्ररूपाः खलु, पराम् भवदापदम् विचिन्तयन्ता मम चैतः आधयः प्रसभम् रुजन्ति।

शब्दार्थ—इमाम् = इस (इस प्रकार की), तावकीम् = आपकी, धियम् = चित्तवृत्ति को, अहम् = मैं, न वेद = नहीं जानती, चित्तवृत्तयः = मन की वृत्तियाँ, विचित्ररूपाः = भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं, खलु = निश्चय ही, पराम् = अत्यधिक, भवदापदम् = आपकी विपत्ति को, विचिन्तयन्त्या = विचार करती हुई, मम = मेरे, चेतः = चित्त को, आधयः = मानसिक व्यथाएँ, प्रसभम् रुजन्ति = हठात् पीड़ित करती हैं अर्थात् व्याकुल कर रही हैं।

अनुवाद—यह आपकी बुद्धि (क्रोध रहित और सन्तोष धारिणी) में नहीं समझ पाती, (लोगों की) चित्तवृत्तियाँ वस्तुतः भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं।

आपकी इस विपत्ति को सोचती हुई मेरे चित की व्यथाएँ मुझे हठात् व्यथित कर देती हैं।

भावार्थ—युधिष्ठिर की दुर्दशा देखकर द्रौपदी अत्यन्त क्षुब्ध है, परन्तु युधिष्ठिर पर इसका कोई प्रभाव परिलक्षित नहीं होता, इस सन्दर्भ में वह कहती है, वस्तुतः लोगों की चित्तवृत्तियाँ नाना रूप, विचित्र एवं दुर्विज्ञेय होती हैं, अतः आपकी इस आपत्ति के समय भी धैर्यधारिणी मति को तो मैं नहीं जानती, पर आपकी इस घोर साम्राज्यनाश पराभव रूप विपत्ति को सोचते हुए मेरे हृदय को तेरी मनोव्यथाएँ मुझे बलात् पीड़ित कर रही हैं। किन्तु आपको दुर्योधन का दुर्व्यवहार और स्वयं का ऐसा कष्टमय रूप बिल्कुल नहीं अखरता। यह बड़े आश्चर्य की बात है।

संस्कृत-व्याख्या—अस्मिन् श्लोके द्रौपदी युधिष्ठिरस्य सहनशीलतां दृष्ट्वा आश्चर्यं प्रकटयति—

इमाम् = एतादृशीम्, तावकीम् = त्वदीयाम्, धियम् = बुद्धिम्, अहम् = द्रौपदी, न वेद = न जानामि, चित्तवृत्तयः = मनसो व्यापाराः, विचित्ररूपाः खलु = निश्चयेन अनेकविधाः भवन्ति। पराम् = महतीम्, विचिन्तयन्त्या = विचारयन्त्याः, मम = द्रौपद्याः, चेतः = चित्तम्, आधयः = मनोव्यथाः, प्रसभम् = बलात्, रुजन्ति = पीडयन्ति।

कोष—'बुद्धिर्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मति' इत्यमरः। 'चित्तं चेतौ हृदयम्' इत्यमरः। 'पुंस्याधिर्मानसी व्यथा' इति चामरः।

अलंकार—सामान्य से विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार तथा उत्तरार्द्ध में सहेतुक वाक्यार्थोयस्थापन से काव्यलिंग अलंकार है।

टिप्पणी—(1) तावकीम् = तव इयम् इति तावकी, युष्मद् + अण् + तवकादेशः + ङीष्।

(2) धियम् = ध्यायति अनया इति ध्यै + क्विप् करणे = धीः ताम्।

(3) विचित्ररूपाः = विचित्रं रूपं यासां ताः (बहुव्रीहि समास)।

(4) चित्तवृत्तयः = चित्तस्य वृत्तयः (तत्पुरुष समास)।

(5) भपदापदम् = भवतः आपद् इति भवदापद् ताम्, तत्पुरुष समास।

(6) विचिन्तयन्ताः = वि + चिन्त् + णिच् + शतृ + षष्ठी।

(7) प्रसभम् = प्रगता सभा विचारः अस्मात् इति प्रसभम् तद्यथा स्यात्तथा।

(8) रुजन्ति = रुज् + लट्।

पुराधिरूढः शयनं महाधनं,
विबोध्यसे यः स्तुतिगीतिमङ्गलैः।
अदभ्रदर्भामधिशय्य स स्थलीं,
जहासि निद्रामशिवैः शिवारुतैः।।38।।

अन्वयः—यः (त्वं) महाधनम् शयनम् अधिरूढः स्तुतिगीतिमंगलैः, पुरा विबोध्यसे, स (त्वम्) अदभ्रदर्भाम् स्थलीम् अधिशय्य अशिवैः शिवारुतैः निद्राम् जहासि।

शब्दार्थ—यः = जो (आप), महाधनम् = बहुमूल्य, शयनम् = शय्या पर, अधिरूढः = लेटे हुए, स्तुतिगीतिमंगलैः = स्तुतियों तथा गीतियों के मांगलिक पाठों से, पुरा = पहले, विबोध्य से = जगाए जाते थे, सः = वही आप, अदभ्रदर्भाम् = प्रचुर कुशवाली, स्थलीम् = भूमि पर, अधिशय्य = शयन करके, अशिवैः = अमांगलिक, शिवारुतैः = गीदड़ियों के रुदन द्वारा, निद्राम् = निद्रा को, जहासि = छोड़ते हो, तोड़तो हो।

अनुवाद—पहले बहुमूल्य शय्या पर सोये हुए (आप) प्रातःकाल स्तुति और मांगलिक गीतों से जगाए जाते थे, अब वही आप बहुत से कुशाओं वाली भूमि पर सोकर अमांगलिक गीदड़ियो के क्रन्दन से निद्रा का परित्याग करते हो।

भावार्थ—इस श्लोक में द्रौपदी युधिष्ठिर के अतीत के सुखमय जीवन की याद दिलाकर वर्तमान जीवन में कितना दुःखद परिवर्तन हुआ है, इसका चित्रण करती है। वह कहती है कि आप बहुमूल्य शय्या पर सोये हुए पहिले (वैतालिकों द्वारा) गुणगानादि युक्त मांगलिक शब्दों द्वारा जगाए जाते थे, वह आप अब बहुत से कुशों वाली अकृत्रिम वनभूमि पर सोकर सियारों अमंगलसूचक की ध्वनियों से निद्रा छोड़ते हो अर्थात् जागते हो। इस वर्णन के द्वारा द्रौपदी कहना चाहती है कि जिस शत्रु के कारण आपकी यह दुर्दशा हुई है, उससे युद्ध करने के लिए सन्नद्ध हो जावें।

संस्कृत-व्याख्या—अस्मिन् श्लोके द्रौपदी युधिष्ठिरस्य दुर्दशां वर्णयति—

यः = भवान् युधिष्ठिरः, महाधनम् = बहुमूल्यम्, शयनम् = शय्याम्, अधिरूढः सन् = शयति सन्, स्तुतिगीतिमंगलैः = प्रशंसागायनै, मांगलिकपाठैः, पुरा = प्राक्, विबोध्यसे = निद्रां त्यजसि, स त्वम् = स एव त्वं युधिष्ठिरः, अदभ्रदर्भाम् = प्रभूतं कुशाच्छादिताम्, स्थलीम् = भूमिम्, अधिशय्य = शयित्वा, अशिवैः = अमङ्गलसूचकैः शिवारुतैः = गोमायुशब्दैः, निद्राम् = शयनम्, जहासि = त्यजसि।

कोष—'महाधनं महामूल्ये' इति विश्वः। 'अस्त्री कुशं कुशो दर्भः' इत्यमरः। अदभ्रं बहुलं बहु इति चामरः। 'शिवा हरीतकी क्रोष्ट्री शमी नद्यामलक्युभे' इति वैजयन्ती। 'स्त्रियां शिवा भूरिमायगोमायुमृगधूर्तकाः सृगालवञ्चकक्रोष्टुफेरुफेरवजम्बुकाः' इत्यमरः।

अलंकार—अनुप्रास तथा विषम अलंकार हैं।

टिप्पणी—(1) महाधनम् = महत् धनं यस्य, तत् (बहुव्रीहि)।

(2) अधिरूढः = अधि + रूह् + क्त।

(3) स्तुतिगीतिमंगलैः = स्तुतयश्च गीतयश्च स्तुतिगीतयः (द्वन्द्व) ता एव मंगलानि (कर्मधारय) तैः। स्तुतिः + स्तु + क्तिन्, गीति = गै + क्तिन्, मंगलम् = मंग + अलच्।

(4) अदभ्रदर्भाम् = अद्रभाः दर्भाः यस्यां सा अदभ्रदर्भा, ताम् बहुव्रीहि।

(5) शिवारुतैः = शिवानां रुतानि इति शिवारुतानि तैः (तत्पु. समास)।

(6) अशिवैः = न शिवा अशिवा तैः (नञ् तत्पु.)।

(7) अधिशय्य = अधि + शी + त्वा इयङ्गादेशः।

(8) जहासि = ओहाक् + लट् म.पु. एकवचन।

पुरोपनीत नृप रामणीयकं,
द्विजातिशेषेण यदेतदन्धसा।
तदद्य ते वन्यफलाशिनः परं,
परैति कार्श्यं यशसा समं वपुः।। 39।।

अन्वयः—हे नृप! यत् एतत् ते वपुः पुरा द्विजातिशेषेण अन्धसा रामणीयकम् उपनीतम्, अद्य वन्यफलाशिनः ते तत् यशसा समम् परम् कार्श्यम् परैति।

शब्दार्थ—हे नृप = हे राजन्, यत् एतत् = जो यह (पुरोदृश्यमान शरीर) वपुः =शरीर, पुरा = पूर्व समय में, द्विजातिशेषेण = द्विजों के (ब्राह्मणों के) खाने से शेष बचे, अन्धसा = अन्न से, रामणीयकम् = मनोहरता को, उपनीतम् = प्राप्त हुआ था, अद्य = आज, इस समय, वन्यफलाशिनः = जंगली फलों को खाने वाले, ते = आपका, तत् वपुः = वह शरीर, यशसा समम् = यश के साथ-साथ, परं कार्श्यम् = अतीव क्षीणता को, परैति = प्राप्त हुआ है।

अनुवाद—हे राजन् ! जो यह आपका शरीर पहले ब्राह्मणों के भोजन कर चुकने के बाद बचे हुए अन्न से सुन्दरता को प्राप्त हो गया था, आज जंगल के फल-कन्दमूल के भक्षण से आपका यह शरीर यश के साथ ही अत्यन्त क्षीण हो रहा है।

भावार्थ—भारतीय संस्कृति दान के पश्चात् उपभोग को महत्त्व देती है। ''यज्ञशिष्टाशिनसन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः'' आदि कथन यज्ञशेष अन्न या ब्राह्मण भोजन से अवशिष्ट अन्न को पवित्र एवं भोज्य मानते हैं। युधिष्ठिर का यह नियम था कि प्रतिदिन ब्राह्मणों को भोजन कराकर स्वयं भोजन करते थे तथा वे भोज्य पदार्थ भी पुष्टिकारक होते थे, जिनके सेवन से युधिष्ठिर का शरीर अत्यन्त सुन्दर, आकर्षक एवं दर्शनीय बना हुआ था। परन्तु वनवास काल में जंगल के कन्दमूल फल खाते रहने से वह शरीर सर्वथा कान्तिहीन एवं क्षीण हो गया है। आशय यह है कि पहले ब्राह्मण भोजन रूप दानशीलता युधिष्ठिर का यश बढ़ाती थी, अब तो युधिष्ठिर स्वयं ही वन्य फल खाकर जीवन-निर्वाह

कर रहे हैं। अतः शरीर के साथ-साथ यश भी क्षीण होता जा रहा है।

संस्कृत-व्याख्या—अस्मिन् श्लोके द्रौपदी युधिष्ठिरस्य शरीरस्य कीर्तेश्च क्षीणतां वर्णयति—

हे नृपः= हे राजन्, यत् एतत् = यदिदम्, ते = तव युधिष्ठिरस्य, वपुः = शरीरम्, पुरा = पूर्वम्, द्विजातिशेषेण = ब्राह्मणभोजनावशिष्टेन, अन्धसा = अन्नेन, रामणीयकम् - मनोहरम्, उपनीतम् = प्रापितम्, अद्य = अधुना, वन्यफलाशिनः = वनोत्पन्नफलभक्षिणः, ते = तव युधिष्ठिरस्य, तद् = तच्छरीरम्, यशसा समम् = कीर्त्या सहैव, परम् = अत्यन्तम्, कार्श्यम् = कृशताम्, परैति = प्राप्नोति।

कोष—'द्विजात्यग्रजन्मभूदेववाडवाः। विप्रश्च ब्राह्मणः' इत्यमरः। 'भिस्सा स्त्री भक्तमन्धोऽन्नमोदनोऽस्त्री सदीदिवि' इत्यमरः। 'यश कीर्तिः समज्ञा च' इति चामरः।

अलंकार—इसमें सहोक्ति अलंकार है। काव्यप्रकाश में सहोक्ति का लक्षण है—
'सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचकम्।'

टिप्पणी—(1) द्विजातिशेषेण = द्वे जाति येषां द्विजातयः (बहुव्रीहि) द्विजातिभ्यः शेषः इति द्विजातिशेषः, तेन द्विजातिशेषेण (पंचमी तत्पुरुष), जाति = जन् + क्तिन् प्रत्यय।

(2) रामणीयकम् = रमणीयस्य भावः। रम् + अनीयर् = रमणीयः + वुञ्।

(3) उपनीतम् = उप + नी + क्त कर्मणि।

(4) वन्यफलाशिनः = वने भवं वन्यम्। वन्यानि फलानि इति वन्यफलानि, वन्यफलानि अश्नाति इति वन्यफलाशी, तस्य वन्यफलाशिनः (उपपद समास)। वन्य = वन + यत्।

(5) कार्श्यम् = कृश + घृञ्।

(6) उपनीतम् = उप + नी + क्त कर्मणि।

(7) परैति = पर + इण् + लट्।

अनारतं यौ मणिपीठशायिना—
वरञ्जयद्राजशिरः स्रजां रजः।
निषीदतस्तौ चरणौ वनेषु ते,
मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषाम्।।40।।

अन्वयः—अनारतम् मणिपीठशायिनौ यौ चरणौ राजशिरस्स्रजाम् रजः अरञ्जयत्, तौ ते (चरणौ) मृगद्विजालूनशिखेषु बर्हिषाम् वनेषु निषीदतः।

शब्दार्थ—अनारतम् = निरन्तर, मणिपीठशायिनौ = मणिमय पीठ पर रखे जाने वाले, यौ चरणौ = जिन पैरों को, राजशिरःस्रजाम् = प्रणाम करते हुए राजाओं के मस्तक की मालाओं के, रजः = पराग, अरञ्जयत् = रंगा करता था, तौ ते = वे दोनों आपके चरण, मृगद्विजालूनशिखेषु = मृगों एवं ब्राह्मणों के द्वारा तोड़े गए अग्रभाग वाले, बर्हिषाम् = कुशाओं के, वनेषु = जंगलों में, निषीदतः = स्थित रहते हैं।

अनुवाद—निरन्तर मणिनिर्मित चौकी पर सुशोभित रहने वाले आपके जिन चरणों को राजाओं के मस्तकों की मालाओं का पराग रंजित किया करता था, अब वे ही (आपके) दोनों चरण मृगों तथा ब्राह्मणों द्वारा छिन्न नोकों वाले कुशा-समूहों पर चलते हैं।

भावार्थ—द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है कि साम्राज्य का उपयोग करते समय जो तुम्हारे चरण सदा मणियों से जड़ित पाद-पीठ पर रखे जाते थे और झुक कर प्रणाम करने वाले सामन्त राजाओं के मस्तक की पुष्पमालाओं के पराग से अनुरंजित हुआ करते थे, वही तुम्हारे चरण आज इन कुशों के वनों में जिनके अग्रभाग हरिणों व द्विजातियों द्वारा काट लिए गए हैं पड़ते हैं। स्थिति यह है कि जो पैर पहले राजाओं की मालाओं के पराग से लाल होते थे, वही अब तीक्ष्ण कुशाओं से क्षत-विक्षत होकर लाल होते हैं।

संस्कृत-व्याख्या—अनारतम् = निरन्तरम्, मणिपीठशायिनौ = मणिजटित-पादपीठसंस्थितौ, यौ ते चरणौ = यौ तव पादौ, राजशिरः स्रजाम् = भूपतिमस्तकमालानाम्, रजः = पुष्परागः, अरञ्जयत् = अलंचकार, तौ ते चरणौ = तौ ते पादौ, मृगद्विजालूनशिखेषु = हरिण-ब्राह्मणोच्छिन्नाग्रभागेषु, बर्हिषाम् = कुशानाम्, वनेषु = अरण्येषु, निषीदतः = तिष्ठतः।

कोष—'पीठसमासनम्' इत्यमरः। 'माल्यं मालास्रजौ' इत्यमरः। 'बर्हिः कुशहुताशयोः' इति विश्वः। 'दन्तविप्राण्डजाः द्विजाः' इत्यमरः।

अलंकार—वर्णावृत्ति से अनुप्रास तथा विरूप संघटना का वर्णन होने से विषम अलंकार है।

टिप्पणी—(1) मणिपीठशायिनौ = मणिमयं पीठं मणिपीठं तस्मिन् मणिपीठे शायिनौ (शी + णिनिः)।

(2) राजशिरःस्रजाम् = राज्ञां शिरांसि (ष. तत्पु.) राजशिरः, राजशिरःसु स्रजः (सुपसुपा) तासाम् शेषे षष्ठी।

(3) मृगद्विजालूनशिखेषु = मृगाश्च, द्विजाश्च इति मृगद्विजाः, तै आलूनाः, मृगद्विजालूनाः शिखाः येषां तानि, मगद्विजालूनशिखानि तेषु। मृग + मृग् + घञ्, द्विज् = द्वि + जन् + ड, आलून = आं + लूञ् + क्त।

(4) बर्हिषु = वृहति इति बर्हिस् बृहि धातु से औणादिक 'इन्' प्रत्यय तथा नकार का लोप।

(5) अरञ्जयत् = रञ्ज् + णिच् + लङ्।

(6) रजः = रञ्ज् + अच्, निपातनान्नलोपः।

(7) निषीदतः = नि + सद् + लट् प्रथम पु. द्विवचन।

द्विषन्निमिता यदियं दशा ततः,
समूलमुन्मूलयतीव मे मनः।
परैरपर्यासितवीर्यसम्पदां,
पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम्॥41॥

अन्वयः—यत् इयम् दशा द्विषान्निमित्ता, ततः मे मनः समूलम् उन्मूलयतीव, परैः अपर्यासितवीर्यसम्पदाम् मानिनाम् पराभवः अपि उत्सव एव।

शब्दार्थ—यत् = क्योंकि, इयं दशा = यह दशा, द्विषान्निमित्ता = शत्रु द्वारा उत्पन्न की गई है, ततः = इसलिए, मे मनः = मेरा मन, समूलम् = जड़ सहित, उन्मूलयति इव, = उखड़ सा रहा है, परैः = शत्रुओं द्वारा, अपर्यासितवीर्यसम्पदाम् = अनभिभूत पराक्रम रूपी सम्पत्ति वाले, मानिनाम् = स्वाभिमानियों के लिए, पराभवोऽपि = पराजय भी, उत्सवः एव = उत्सव तुल्य ही होता है।

अनुवाद—क्योंकि आपकी यह दशा शत्रुओं के कारण है, इसलिए मेरे हृदय को समूल उखाड़-सी रही है। शत्रुओं से अपराजित पौरुष रूप सम्पत्ति वाले स्वाभिमानियों के लिए पराजय भी उत्सव अथवा आनन्द ही होता है।

भावार्थ—द्रौपदी कहती है कि आपकी यह दुर्दशा शत्रुओं द्वारा की गई है, इसलिए मेरे अन्तःकरण को अत्यधिक पीड़ा हो रही है। वस्तुतः शत्रुओं द्वारा दी जाने वाली विपत्ति असह्य होती है, यह मन के धैर्य, शान्ति, सन्तोष आदि सभी भावों को नष्ट कर देती है। यदि यह विपत्ति दैवीय हो, शत्रु द्वारा मानहानि न की गई हो, तो यह विपत्ति किसी प्रकार सहन की जा सकती है अर्थात् जिसकी शक्ति और सम्पत्ति शत्रु के नष्ट न होकर देवकोप से नष्ट हुई तो उनके लिए इस प्रकार की दशा का परिवर्तन भी एक प्रकार से उत्सव के ही समान होता है। तात्पर्य यह है कि मानहानि जितनी दुःसह होती है, दैवीय विपत्ति उतनी नहीं।

संस्कृत-व्याख्या—अस्मिन् श्लोके द्रौपदी स्वाभिमानीनां स्वभावस्य वर्णनं करोति–

यत् = यस्मात् कारणात्, इयम् = एषा वर्तमाना, दशा = अवस्था, द्विषान्निमित्ता = शत्रुहेतुका, ततः = तस्मात् कारणात्, मे = मम, द्रौपद्याः मनः= चेतः, समूलम् = निःशेषम्,

उन्मूलयति इव = उत्पाटयति इव, परैः = शत्रुभिः, अपर्यासितवीर्यसम्पदाम् = अतिरस्कृतशक्तिसम्पदाम्, मानिनाम् = मनस्विनाम्, पराभवः = मानहानिः पराजयः वा, अपि = तुलनायाम्, उत्सवः एव = आनन्दहेतुरेव भवति। मानहानिर्दुःसहा न त्वापद् इति भावः।

कोष—'दशा वार्तावस्थायाम्' इति विश्वः। 'महः उद्धवः उत्सवः' इत्यमरः। 'रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः' इत्यमरः।

अलंकार—'पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम्' में वैधर्म्य से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार तथा 'उन्मूलयितीव' से उत्प्रेक्षा अलंकार है।

टिप्पणी—(1) द्विषनिमित्ताः = द्विषन्तः निमित्तं यस्या सा, (बहुब्रीहि)।

(2) समूलम् = मूलेन सह वर्तमानम् इति (बहुव्रीहि) तत् यथा स्यात्तथा।

(3) उन्मूलयतीव = उत् + मूल + णिच् (चुरादि + लट्)

(4) अपर्यासितवीर्यसम्पदाम् = न पर्यासिता अपर्यासिता, नञ् तत्पुरुष। अपर्यासिता वीर्यसम्पद् येषां ते अपर्यासितवीर्यसम्पदः तेषाम्। (बहुव्रीहि समास)

(5) मानिनाम् = मनः (मन् + घञ्) अस्यास्ति इति मानिन (मान + इनि) तेषाम्।

(6) पराभवः = पराभूयते इति परा + भू + अप् भावे।

(7) उत्सवः = उत् + सू + अच्।

विहाय शान्तिं नृप धाम तत्पुनः,
प्रसीद सन्धेहि वधाय विद्विषाम्।
व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहाः,
शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः ।। 42 ।।

अन्वयः—हे नृप, शान्तिम् विहाय तत् धाम विद्विषाम् वधाय पुनः सन्धेहि प्रसीद, निःस्पृहा मुनयः शत्रून् अवधूय शमेन सिद्धिम् व्रजन्ति, भूभृतो न।

शब्दार्थ—हे नृप = हे राजन्, शान्तिम् = शान्ति को, विहाय = त्यागकर, तत् धाम = उस तेज को, विद्विषाम् = शत्रुओं के, वधाय = वध के लिए, पुनः = फिर से, सन्धेहि = धारण करो, प्रसीद = प्रसन्न होइए, निःस्पृहाः = इच्छा रहित, मुनयः = मुनि लोग, शत्रून् = शत्रुओं को, अवधूय = जीतकर, शमेनः = शान्ति के द्वारा, सिद्धिम् = सिद्धि को, व्रजन्ति = प्राप्त करते हैं, भूभृतो न = राजा लोग नहीं।

अनुवाद—हे राजन्! शान्ति का परित्याग कर आप उस तेज को शत्रुओं के वध के लिए पुनः धारण कीजिए। लौकिक कामनाओं से मुक्त अर्थात् निष्काम तपस्वी लोग ही

(काम क्रोधादि) शत्रुओं को जीतकर शान्ति के द्वारा सिद्धि को प्राप्त करते हैं, राजा लोग नहीं।

भावार्थ—द्रौपदी युधिष्ठिर को उत्प्रेरित करती हुई कहती है कि क्षमा, धैर्य, सहनशीलता यद्यपि सात्विक गुण हैं, किन्तु वे सभी स्थितियों में उपयोगी नहीं होते। वस्तुतः राजधर्म मुनिधर्म से सर्वथा भिन्न होता है। मुनि लोग केवल काम-क्रोधादि आन्तरिक शत्रुओं को जीतकर शम उपाय द्वारा मोक्ष रूप सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं। परन्तु राजा लोग ऐसा नहीं कर सकते, शान्ति से तो मुनिजन ही मुक्तिरूप सिद्धि को पाते हैं। किन्तु राज्याभिलाषी नृपजनों को तो तेजस्विता धारण कर शत्रु विनाश के द्वारा ही सिद्धि मिलती है।

संस्कृत-व्याख्या—अस्मिन् श्लोके युधिष्ठिरं क्षमाशीलरूपस्य परित्यागार्थं कथयति–

हे नृप = हे राजन्, शान्तिम् = सन्तोषम्, विहाय = त्यक्त्वा, विद्विषाम् = शत्रूणाम्, बधाय = विनाशाय, तद्धाम = स्वकीयं प्रथितं तेजः, पुनः = भूयः, सन्धेहि = स्वीकुरु, प्रसीद = प्रसांद गच्छ, निःस्पृहा = निष्कामाः, मुनयः = ऋषय, शत्रून् = रिपून्, अवधूय = विजित्य, शमेन = शान्त्या, सिद्धिम् = सफलताम्, व्रजन्ति = प्राप्नुवन्ति, भूभृतः न = नतु राजानः। कैवल्यकायवद्राजकार्यं न शान्तिसाध्यमित्यर्थः।

कोष—'धाम रश्मौ गृहे देहे स्थाने जन्मप्रभावयोः' इति विश्वः। 'इच्छा वाञ्छा स्पृहा कांक्षा कामेप्सा रुचिस्तथा' इति हलायुधः।

अलंकार—अनुप्रास तथा अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

टिप्पणी—(1) शान्तिम् = शम् + क्तिन्, इति ताम्।

(2) प्रसीद = प्र + सद् + लट्।

(3) विहाय = वि + हा + ल्यप्—क्त्वा।

(4) सन्धेहि = सम् + धा + लोट्।

(5) निःस्पृहा = नास्ति स्पृहा येषां ते , यद्वा निर्गता स्पृहा येषां ते, बहुव्रीहि समास।

(6) विद्विषाम् = वि + द्विष् + क्विप्। षष्ठी बहुवचन।

(7) अवधूय = अव + धू + ल्यप्।

(8) सिद्धिम् = सिध् + क्तिन्।

(9) भूभृतः = भुवं विभ्रति इति भूभृत्, तस्य। उपपद तत्पुरुष समास, भू + भृ + क्विप्।

(10) व्रजन्ति = व्रज् + लट् प्र.पु. बहुवचन।

पुरःसरा धामवतां यशोधनाः,
सुदुःसहं प्राप्य निकारमीदृशम्।
भवादृशाश्चेदधिकुर्वते रतिं,
निराश्रया हन्त हता मनस्विता ।। 43 ।।

अन्वयः—धामवताम् पुरःसराः यशोधनाः भवादृशाः ईदृशम् सदुःसहम् निकारम् प्राप्य रतिम् अधिकुर्वते चेत्, हन्त मनस्विता निराश्रया हता।

शब्दार्थ—धामवताम् = तेजस्वियों में, पुरःसराः = मुख्य अग्रगामी, यशोधनाः = कीर्तिधन, यश को ही परम धन समझने वाले, भवादृशाः = आप जैसे सर्व शक्तिसम्पन्न लोग भी, ईदृशम् = ऐसे, सुदुःसहम् = अति दुःसह, निकारम् = शत्रुकृत अपमान को, प्राप्य = प्राप्त करके, रतिम् = सन्तोष या शान्ति, अधिकुर्वते = स्वीकार करते हैं, चेत् = यदि, हन्त = हाय, मनस्विता = तेजस्विता, निराश्रया = असहाय होती हुई, हता = नष्ट हो गई।

अनुवाद—तेजस्वी लोगों में अग्रगण्य यशस्वी आप जैसे महापुरुष यदि इस प्रकार असहनीय अपमान को पाकर सन्तोष कर लेते हैं तो आह! मनस्विता निराश्रित होकर समाप्त हो गई।

भावार्थ—इस श्लोक में द्रौपदी कुशल मनोवैज्ञानिक की भाँति युधिष्ठिर के शौर्य एवं स्वाभिमान की प्रशंसा करती हुई उन्हें प्रतीकार हेतु प्रेरित करती हुई कहती है—आप चूंकि तेजस्वियों में श्रेष्ठ यशोधन है। अतः आपको शत्रुकृत अपमान से उद्दीप्त होकर प्रतिशोध के लिए प्रयत्न करना चाहिए। वह कहना चाहती है कि निर्बल व्यक्ति तो विवशता में अपमान सहते हैं। किन्तु आप जैसे प्रतापी और यशस्वी होकर भी शत्रुकृत अपमान को सहन करते हुए शान्ति धारण करते हैं, तो फिर स्वाभिमान को कहीं ठिकाना नहीं मिलेगा।

संस्कृत-व्याख्या—अस्मिन् श्लोके द्रौपदी अपमानप्रतीकाराय युधिष्ठिरं प्रेरयति–

धामवताम् = तेजस्विनाम्, पुरः सराः = अग्रेसराः, यशोधनाः = यशस्विनः, भवादृशाः = भवत्समानाः, नृपाः, ईदृशम् = एतादृशम्, सदुःसहम् = अति दुःसहम्, निकारम् = अपमानम्, प्राप्य = लब्ध्वा, रतिम् = सन्तोषम्, अधिकुर्वते चेत् = स्वीकुर्वते चेत्, हन्त = इति खेदे, मनस्विता = स्वाभिमानता, निराश्रया = निरवलम्बना, हता = विनाशं प्राप्ता।

कोष—'निकारः स्यात्परिभवे धान्यस्योत्क्षेपणेऽपि च' इति धरणिः। 'हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयो' इत्यमरः।

अलंकार—साभिप्राय विशेषणों के प्रयोग से परिकर तथा सहेतुक वाक्यार्थ से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

टिप्पणी—(1) धामवताम् = धाम अस्ति एषामिति धामवन्तः, धामन् + मतुप्, तेषाम् (बहुव्रीहि) षष्ठी शेषे।

(2) पुरःसराः = पुराः सरन्तीति पुरस् + सृ + ट कर्त्तरि।

(3) यशोधनाः = यशः एव धनं येषां ते। बहुव्रीहि समास।

(4) सदुःसहम् = सु अतिशयेन दुःसहं सुदुःसहम्। दुर् + सह् + खल् = दुःसहम्।

(5) निकारम् = नि + कृ + घञ् भावे, तम्।

(6) रतिम् = रम् + क्तिन् प्रत्यय।

(7) अधिकुर्वते = अधि + कृ + लट्, कर्त्रभिप्रायविवक्षायामात्मनेपदम्।

(8) निराश्रयाः = नास्ति आश्रय यस्याः सा निराश्रया (बहुव्रीहि) निर् + आङ् + श्रि + अच् प्रत्यय।

(9) मनस्विताः = मनस्विनः भावः मनस्विता। मनस् + विन् + तल् = मनस्विता।

(10) हता = हन् + क्त + टाप्।

अथ क्षमामेव निरस्तविक्रम—
श्चिराय पर्य्येषि सुखस्य साधनम्।
विहाय लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकं,
जटाधरः सञ्जुहुधीह पावकम्।।44।।

अन्वयः—अथ निरस्तविक्रमः चिराय क्षमामेव सुखस्य साधनम् पर्य्येषि लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकम् विहाय जटाधरः सन् इह पावकम् सञ्जुहुधि।

शब्दार्थ—अथ = अथवा, निरस्तविक्रमः = युद्ध के उत्साह से रहित होकर, चिराय = चिरकाल तक सर्वथा यावज्जीवन, क्षमाम् एव = शान्ति को ही, सुखस्य = सुख का, साधनम् = उपाय, पर्य्येषि = समझते हो, लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकम् = राजचिह्न रूप धनुष को, विहाय = त्याग कर, जटाधरः = जटाधारी बनकर, इह = यहीं (इस वन में), पावकम् = अग्नि में, सञ्जहुधि = हवन करो।

अनुवाद—यदि आप पराक्रमहीन होकर चिरकाल तक क्षमा को ही सुख का उपाय समझते हो, तो आप राजचिह्न स्वरूप धनुष का परित्याग कर जटाधारी बनकर यहाँ (इसी वन में) अग्नि में हवन करना प्रारम्भ कर दो।

भावार्थ—इस श्लोक में द्रौपदी अपनी वाणी के तीखे प्रहारों से युधिष्ठिर में उत्साह का संचार करना चाहती है। वह कहती है यदि आप शत्रुकृत अपमान को सहते हुए भी पराक्रम धारण करना उचित नहीं समझते तथा क्षमा को ही जीवन-पर्यन्त सुख का

साधन समझते हो तो फिर राजचिह्न के रूप में धनुष धारण करने की आवश्यकता नहीं है। धनुष तो राजचिह्न होता है। जब मुनिव्रत ही धारण करना है, क्षमावान् ही बनना है तो जटाधारी बनकर यहाँ वन में अग्नि में हवन करो, धनुष बाण त्याग दो। तात्पर्य यह है कि क्षत्रियों को तो कर्त्तव्य-पालनार्थ शस्त्र प्रयोग करना ही पड़ता है। यदि आपकी बल प्रयोग में आस्था नहीं है तो शस्त्र परित्याग करके तपस्वी बन जाओ।

संस्कृत-व्याख्या—अस्मिन् श्लोके द्रौपदी युधिष्ठिरस्य शान्तिनीतिं कायरताद्योतिकां मत्वा भर्त्सनां करोति–

अथ = यदि, निरस्तविक्रमः = परित्यक्तपराक्रमः, चिराय = दीर्घकालेन अपि, क्षमाम् एव = क्षमाशीलताम् एवं, सुखस्य = आनन्दस्य, साधनम् = उपायम्, पर्य्येषि = अवगच्छसि (तर्हि), लक्ष्मीपतिलक्ष्म = भूपतिचिह्नम्, कार्मुकम् = धनुः, विहायः परित्यज्य, जटाधरः = जटाधारको भूत्वा, इह = अस्मिन् वने, पावकम् सञ्जुहुधि = अग्नौ होमं कुरु।

कोष—'क्षिति-क्षान्त्योः क्षमा इत्यमरः।' 'चिरायचिररात्राय चिरस्याद्यश्चिरार्थकाः' इत्यमरः। 'लक्ष्म चिह्नप्रधानयोः' इति चामर। 'धनुश्चापौ ऽन्वशरासनकोदण्डकार्मुकम्' इति, 'कृशानुः पावकोऽनलः' इति चामरः।

अलंकार—अनुप्रास तथा हेतु अलंकार है।

टिप्पणी—(1) निरस्तविक्रमः = निर् + अस् (दिवादिः) + क्त = निरस्तः, विक्रमः = वि + क्रम् + घञ् भावे। निरस्तः विक्रमः येन सः निरस्तविक्रमः, बहुव्रीहि।

(2) पर्येषि = परि + इ + लट्।

(3) लक्ष्मीपतिलक्ष्मकार्मुकम् = लक्ष्म्याः पति इति लक्ष्मीपतिः (षष्ठी तत्पु.) लक्ष्मीपतेः लक्ष्म इति लक्ष्मीपतिलक्षम तत् लक्ष्मीपतिलक्ष्म (षष्ठी तत्पु.), कार्मुकम् = कर्मणे तस्मै प्रभवीति कार्मुकम्, कर्मन् + उकञ्, तत्।

(4) जटाधरः = जटानां धरः जटाधरः। (षष्ठी तत्पु.) धरतीति धरः, जटा + धृ + अच् = जटाधरः।

(5) पावकम् = पुनातीति पावकः पुः ण्वुल् कर्त्तरि तम्।

(6) सञ्जुहुधि = सम् + हु धातु, लोट् लकार म.पु. एकवचन।

(7) विहाय = वि + हा + क्त्वा = ल्यपादेशः।

न समयपरिरक्षणं क्षमं ते,
निकृतिपरेषु परेषु भूरिधाम्नः।
अरिषु हि विजयार्थिनः क्षितीशाः,
विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि।। 45।।

Most

अन्वयः—परेषु निकृतिपरेषु भूरिधाम्नः ते समयपरिरक्षणम् न क्षमम्, हि विजयार्थिनः क्षितीशाः अरिषु सोपधि सन्धिदूषणानि विदधति।

शब्दार्थ—परेषु = शत्रुओं के, निकृतिपरेषु = अपमान करने में तत्पर होने पर, भूरिधाम्नः = अत्यधिक तेज वाले, महापराक्रमीशाली, ते = आपका, समयपरिरक्षणम् = प्रतिज्ञानुसार वनवास की अवधि का पालन करना, न क्षमम् = उचित नहीं है, हि = क्योंकि, विजयार्थिनः = जीतने के इच्छुकः, क्षितीशाः = राजा लोग, नृपति, अरिषु = शत्रुओं के विषय में, सोपधि = कपट के साथ, सन्धिदूषणानि = सन्धि भंग रूप दोष, विदधति = करते हैं।

अनुवाद—शत्रुओं के अपकार में संलग्न हो जाने पर परम तेजस्वी आपको समय (वनवास काल को पूरा करने की शर्त) का पालन अर्थात् "मैं तेरह वर्ष तक वन में वास करूँगा, इस प्रतिज्ञा का पालन करना" उचित नहीं है। क्योंकि विजय की इच्छा रखने वाले लोग शत्रुओं के सम्बन्ध में छलपूर्वक सन्धि तोड़ देते हैं।

भावार्थ—द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है यदि आप प्रतिज्ञानुसार तेरह वर्ष की अवधि की प्रतीक्षा कर रहे हैं तो आपका प्रतीक्षा करना अनुचित है, क्योंकि अब जबकि शत्रु हमारा अपमान करने में तत्पर हो रहे हैं, ऐसे समय में प्रतीकार में समर्थ होकर भी आपको अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए चुपचाप वनवास में रहना उचित नहीं है। शूरवीर पुरुष तो येन-केन प्रकारेण शत्रुओं को नष्ट कर अपनी कार्यसिद्धि में ही अपनी नीति सार्थक मानते हैं तथा विजय की अभिलाषा रखने वाले नृप जन शत्रुओं के विषय में की गई अपनी सन्धि-विषयक प्रतिज्ञा को भी कपटपूर्वक तोड़ देते हैं और परिस्थितियों के अनुकूल कार्य करते हैं। अतः आपको भी अब सन्धि-विघटनपूर्वक शत्रुओं पर आक्रमण कर ही देना चाहिए।

संस्कृत-व्याख्या—अस्मिन् श्लोके द्रौपदी सन्धिपालनं त्यक्त्वा बलप्रयोगाय युधिष्ठिरं प्रेरयति—

परेषु = शत्रुषु, निकृतिपरेषु = अपकारतत्परेषु, भूरिधाम्नः = अतितेजस्विनः, ते = तव युधिष्ठिरस्य, समयपरिरक्षणम् = समयप्रतीक्षाकरणम्, न = नहि, क्षमम् = उचितमस्ति, हि = यतोहि, विजयार्थिनः = विजयकांक्षिणः, क्षितीशाः = नृपतयः, अरिषु = शत्रुविषयेषु, सोपधि = सकपटम्, सन्धिदूषणानि = सन्धौ दोषभङ्गम्, विदधति = उपस्थापयन्ति।

केनचिद् ब्याजेन दोषमासाद्य सन्धि दूषयन्ति, कार्यसाधनं च कुर्वन्ति।

कोष—'युक्ते क्षमं शक्ते हिते त्रिषु' इत्यमरः। 'समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः। 'रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुहृदः' इति चामरः। 'कपटोऽस्त्री ब्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतवे' इति चामरः।

अलंकार—इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार है। 'परेषु परेषु' में यमक अलंकार है।

टिप्पणी—(1) निकृतिपरेषु = निकृतिः परं येषां ते निकृतिपराः तेषु। बहुव्रीहि समास, निकृति = नि + कृ + क्तिन्।

(2) भूरिधाम्नः = भूर धाम यस्य सः (बहुव्रीहि), तस्य।

(3) समयपरिरक्षणम् = समयस्य परिरक्षणम्। तत्पुरुष समास।

(4) विजयार्थिनः = वि + जि + अच् भावे = विजयः। तमर्थयन्ते इति विजयार्थिनः (विजय + अर्थ + णिनि कर्त्तरि)।

(5) क्षितीशाः = क्षितेः ईशाः (षष्ठी तत्पु.)

(6) सन्धिदूषणानि = सन्धेः दूषणानि सन्धिदूषणानि, तानि। तत्पुरुष समास।

(7) सोपधि = उपधीयते अनेन, स + उप + धु + कि, उपसर्गे धो किः।

(8) विदधति = वि + धा + लट्, प्र. पु. बहुवचन।

छन्द—इस श्लोक में पुष्पिताग्रा छन्द है। इसका लक्षण है–अयुजि नयुगरेफतो यकारो, युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा। अर्थात् प्रथम और तृतीय पादों में नगण, नगण, रगण, यगण एवं द्वितीय तथा चतुर्थ पदों में नगण, जगण, जगण, रगण और एक गुरु हो तो पुष्पिताग्रा छन्द होता है।

विधिसमयनियोगाद्दीप्तिसंहारजिह्मं,
शिथिलवसुमगाधे मग्नमापत्पयोधौ।
रिपुतिमिरमुदस्योदीयमानं दिनादौ,
दिनकृतमिव लक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः ।। 46 ।।

अन्वयः—विधिसमयनियोगात् अगाधे आपत्पयोधौ मग्नम् दीप्तिसंहारजिह्मम् शिथिलवसुम् रिपुतिमिरम् उदस्य उदीयमानं त्वाम् दिनादौ दिनकृतमिव लक्ष्मीः भूयः समभ्येतु।

शब्दार्थ—विधिसमयनियोगात् = भाग्य और काल के दुरतिक्रमणीय होने के कारण अर्थात् दुर्भाग्यवश और काल वश, अगाधे = गंभीर, आपत्पयौधौ = विपत्ति रूपी समुद्र में, मग्नम्= डूबे हुए, अस्त वेला में डूबे हुए, दीप्तिसंहारजिह्मम् = तेज प्रभाव, कीर्ति आदि के विनाश से दुःखी मन वाले, धूप के सहार से अप्रसन्न, शिथिलवसुम् = शिथिलधन वाले अर्थात् द्ररिद्र, मंद किरणों वाले, रिपुतिमिरम् = शत्रु रूपी अन्धकार, या, अंधकार रूप शत्रु को, उदस्य = दूर करके, उदीयमानम् = उन्नत होते हुए, त्वाम् = आप, युधिष्ठिर के

पास, दिनादौ = दिन के प्रारम्भ में, प्रातःकाल, दिनकृतम् इव = सूर्य के समान, लक्ष्मीः = राजलक्ष्मी, दिन की शोभा, भूयः = फिर से, समभ्येतु = प्राप्त होवे।

अनुवाद—भाग्य और समय के नियमन के कारण विपत्ति रूपी अथाह समुद्र में डूबे हुए, कान्ति के नष्ट हो जाने से अनुज्ज्वल, मन्द किरणों वाले शत्रुरूप अन्धकार को दूर करके उदित होते हुए सूर्य को जिस प्रकार प्रातःकालीन शोभा फिर प्राप्त होती है, उसी प्रकार भाग्य और समय के प्रभाव से गम्भीर एवं दुस्तर विपत्ति सागर में डूबे हुए, तेज प्रभावादि के विनाश से खिन्न मन वाले, सम्पत्तिहीन और अन्धकार के समान शत्रुओं को नष्ट कर उदीयमान आपको फिर से राजलक्ष्मी प्राप्त होवे।

भावार्थ—द्रौपदी सर्ग के अन्त में युधिष्ठिर के प्रति मंगलकामना व्यक्त करती हुई सूर्य का दृष्टान्त देती हुई कहती है कि भाग्य एवं समय के परिवर्तन से मनुष्य पर सुख-दुःख आते रहते हैं। जिस तरह सायंकाल में सूर्य समुद्र में डूब जाता है, प्रकाश का नाश होने से निस्तेज हो जाता है तथा अपनी किरणों को खो बैठता है, परन्तु प्रातःकाल होते ही वही सूर्य अन्धकार रूपी शत्रु का नाश कर पुनः दिन की शोभा को प्राप्त कर लेता है, वैसे ही आप का भी भाग्योदय होगा, वह भी पूर्ववत् श्री सम्पन्न बन जाएगा। अतः द्रौपदी कहती है कि आप भाग्यचक्र से विपत्ति के समुद्र में पड़ गए हैं। पुनः उद्योग कीजिए, आप भी सूर्य के समान अपने शत्रुओं का संहार कर विजयी होंगे तथा अपने अपहृत राज्य एवं प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करेंगे।

संस्कृत-व्याख्या—अस्मिन् श्लोके द्रौपदी युधिष्ठिरस्य अभ्युदयस्य मंगलकामनां करोति—

विधिसमयनियोगात् = दैवकालनियमानत्, अगाधे = दुस्तरे, आपत्पयोधौ = विपत्समुद्रे (सूर्यपक्षे-समुद्रे), मग्नम् = पतितम्, दीप्तिसंहारजिह्मम् = प्रतापसंहारम्लानम् (सूर्यपक्षे-आतपसंहारास्वच्छम्) शिथिलवसुम् = शिथिलधनम् (सूर्यपक्षे-शिथिलरश्मिम्), रिपुतिमिरम् = शत्रुरूपमन्धकारं, उदस्य = विनाश्य, उदीयमानम् = उदगच्छन्तम् (सूर्य पक्षे-उदयं गच्छन्तम्) त्वाम् = भवन्तम्, युधिष्ठिरं, दिनादौ = प्रातःकाले, दिनकृतमिव = सूर्यमिव लक्ष्मीः = राज्यलक्ष्मीः (सूर्यपक्षे-दिवसशोभा) पुनः=भूयः, समभ्येतु = प्राप्नोतु।

कोष—'विधिर्विधाने दैवे च' इत्यमरः। 'वसुर्देवेऽग्नौ रश्मौ च वसु तोये धने मर्णो इति वैजयन्ती। 'अगाधमतलस्पर्शे' इत्यमरः। 'अन्धकारोऽस्त्रियां ध्वान्तं तमिस्रं तिमिरं तमः' इति, 'लक्ष्मी पद्मालया पद्मा कमला श्रीहरिप्रिया' इति चामरः।

अलंकार—श्लेष, उपमा तथा काव्यलिङ्ग अलंकार प्रयुक्त हैं।

टिप्पणी—(1) विधिसमयनियोगात् = विधिश्च समयश्च इति विधिसमयौ, तयोः नियोगः विधिसमयनियोगः, तस्मात्। तत्पुरुष समास। विधि = विदधाति विश्वमिति वि +धा + किः।

(2) आपत्पयौधौ = पयांसि धीयन्ते अस्मिन्निति पयोधिः, पयस् + धा + कि। आपत् पयोधिः इव आपत्पयोधिः, तस्मिन् आपत्पयोधौ (उपमित समास)।

(3) दीप्तिसंहारजिह्मम् = दीप्तेः संहारः इति दीप्तिसंहारः (षष्ठी तत्पु.), दीप्तिसंहारेण जिह्मः इति दीप्तिसंहारजिह्मः, तं दीप्तिसंहारजिह्म, (त. तत्पु.), संहार =सम् + हृ + घञ् भावे।

(4) शिथिलवसुम् = शिथिलं वसु यस्य सः (बहुव्रीहि), तम्।

(5) दिनादौ = दिनस्य आदिः इति दिनादिः, तस्मिन्। तत्पुरुष समास।

(6) रिपुतिमिरम् = रिपुः तिमिरमिव रिपुतिमिरम्, तत् (उपपद समास)।

(7) उदस्य = उत् + अस् + ल्यप्।

(8) उदीयमानम् = उद् +ईङ् + शानच्।

(9) समभ्येतु = सम् +अभि + इ + लोट्।

(10) दिनकृतमिव = दिनं करोतीति दिनकृत् = दिन + कृ + क्विप् तमिव।

(11) अगाधे = गाध्यते इति गाधः गाध् + घञ् न गाधोऽगाधः (नञ्समास)।

छन्द—इस श्लोक में मालिनी छन्द है, जिसका लक्षण है ''ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलौकैः'' अर्थात् नगण, नगण, मगण, यगण, यगण से युक्त तथा 8 एवं 7 पर यति से युक्त मालिनी छन्द होता है।

विशेष—(i) महाकवि भारवि ने काव्य का आरम्भ मंगलवाचक 'श्री' शब्द से किया है। सर्ग के अन्त में भी मंगलवाचक 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग कर काव्यशास्त्रीय सिद्धान्त का पालन किया है। भाष्यकार पक्तजलि ने कहा भी है–''मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलन्तानि च शास्त्राणि प्रथयन्ते, वीरपुरुषकाण्यायुष्मत्पुरुषकाणि च भवन्त्यध्येतारश्च प्रवक्तारो भवन्ति'' इति।

(ii) महाकाव्य के लक्षणानुसार सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तन अपेक्षित रहता है। महाकवि भारवि ने इसका पालन किया है। दण्डी का कथन है–''सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्राव्यवृत्तः सुसन्धिभिः। सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जकम्।।'' प्रथम सर्ग का कथानक यद्यपि अतिविस्तीर्ण नहीं है, परन्तु यह रोचक, मुख सन्धियुक्त, भाविकथा का सूचक, वीर रसान्वित तथा व्यङ्ग्यार्थवैभव से सम्पन्न है।

(iii) 'इति भारविकृते महाकाव्ये' इत्यादि कथन से सर्ग की समाप्ति दर्शायी गई है।

❑ ❑ ❑